ISSN : 2321-3922
अक्टूबर-दिसम्बर-2025
RNI-BIHHIN05394
वर्ष-13 अंक-43
Regd. No. PT/105/BGP-13/2027

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–13 अंक 43

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अक्टूबर–दिसम्बर 2025

प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :

श्री दयानन्द जायसवाल

संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल

मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
अक्टूबर–दिसम्बर 2025

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जनवरी 2026 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

क्रमांक	विषय	लेखक के नाम	पृष्ठांक
1	संपादकीय	दयानन्द जायसवाल	5
2	समीक्षा : रूकती नहीं है ज़िन्दगी : पथरीले यथार्थ की जमीं पर उगा	कुलदीप शर्मा	6
3	समीक्षा : माण्डवी के बहाने भारतीय सांस्कृतिक परंपरा पर एक बहस	डॉ. अरूण कुमार वर्मा	10
4	समीक्षा : उम्मीद की तरह लौटना तुम	श्री शैलेन्द्र शरण	12
5	समीक्षा : समाधान की राह दिखाती लघुकथाएँ	अरविंद अवस्थी	13
6	समीक्षा : घिस रहा है धान का कटोरा ग्रामीण संस्कृति की महक की कविताएँ	डॉ. नीलोत्पल रमेश	14
7	समीक्षा : जाना है समय के पार : गीत संग्रह	उषा पाण्डेय 'कनक'	16
8	समीक्षा : साहित्य की गुमटी : व्यंग्य की तीखी कुल्हाड़ी	आर पी तोमर	18
9	समीक्षा : 'प्रेम न करियो कोय'	डॉ. संदीप अवस्थी	21
10	समीक्षा : 'लौटा हुआ लिफाफा'	डॉ. राशि सिन्हा	24
11	समीक्षा : आत्मीय अनुषंग के चित्र: कोशिशों के पुल	डॉ. रणजीत पटेल	26
12	समीक्षा :'बख्तियारपुर'	कैलाश केशरी	28
13	व्यंग्य आलेख :बरखा रानी, तुम क्यूँ आती हो!	डॉ. प्रदीप उपाध्याय	30
14	आलेख : हिंदी ही अनुवाद के लिए आधार भाषा	डॉ. अमर सिंह बधान	31
15	आलेख :समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन	डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय	33
16	आलेख :इंटरनेट और तकनीकी युग में हिंदी का बढ़ता प्रभाव	विभा कनन	37
17	आलेख : क्या आप डॉ. बलदेव को जानते हैं?	बसंत राघव	38
18	कहानी : किसके लिए	डॉ. पूरन सिंह	39
19	कहानी : ख्वाबों के ठोर	निशा भास्कर	40
20	कहानी : परिन्दे की बेकशी	देववंश दूबे	42
21	कहानी : विग्रहाश्रय	डॉ. रानु मुखर्जी	44
22	जीवनी :साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में बख़्शी जी की निबंध कला	डॉ. नलिनी श्रीवास्तव	48
23	कहानी : धूप	डॉ. यशोधरा भटनागर	50
24	कविता : नवगीत : पुरखों की छुट्टी	मांगन मिश्र 'मार्तण्ड'	32
25	ग़ज़ल	डॉ. अंजना वर्मा	23
26	कविता : वर्षा की बूँदें	गौरी शंकर वैश्य 'विनम्र'	41
28	कविता : बहने लगी तुम मेरी पलकों में	मिथिलेश आदित्य	36
27	गीत : निठुर नियति के खेल निराले		
28	कविता : रिक्तता	प्रिया देवांगन 'प्रियू'	41
29	कविता : कौन है वो?	चन्द्रशेखर शर्मा 'चन्द्रेश	38
30	कविता : आपॅरेशन सिन्दूर	शैलेन्द्र कुमार चतुर्वेदी,	27
31	ग़ज़ल :	प्रवीण पारीक 'अंशु'	9
32	कविता : हरसिंगार	संजय वर्मा 'दृष्टि',	15
33	कविताएँ : क्या मेरा कोई मोल नहीं?, हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ	कुमारी किरण	29
35	कविता : छोटे शहर का प्रेम	सुभाषचन्द्र झा	20
36	कविता : द्युत–क्रीडा	भोला प्रसाद मंडल 'भ्रमर'	27
37.	कविता : 'वह तो था बीमार'	वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन'	27
38.	कविता : मेरे भीतर तुम	महेश कुमार केशरी	43
39	कविता : बीच बहस में	पवन शर्मा	47

वह तो था बीमार

मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घरवालों से–'वह तो था बीमार'
अगर भूख की बातों से तुम कर न से इनकार
फिर तो खायेंगे घरवाले हाकिम की फटकार
ले भागेगी जीप लाश को सात समुन्दर पार
अंग–अंग की चीर–फाड़ होगी पिफर बारंबार
मरी भूख को मारेंगे फिर सर्जन के औजार
जो चाहेगी लिखवा लेगी डॉक्टर से सरकार
जिलाधीश ही कहलायेंगे करुणा के अवतार
अंदर से धिक्कार उठेगी बाहर से हुंकार
मंत्री लेकिन सुना करेंगे अपनी जय–जयकार
सौ का खाना खायेंगे, पर लेंगे नहीं डकार
मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घरवालों से 'वह तो था बीमार'।

वैद्यनाथ मिश्र 'नागार्जुन'

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

साहित्य जीवन की परम अनुभूति है, क्योंकि यह जीवन की गहराई को समझने, मानवीय भावनाओं को व्यक्त करने और जीवन के सत्य को व्यक्त करने तथा जानने का एक शक्तिशाली माध्यम है। यह केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि यह ज्ञान, संवेदनशीलता और सोचने–समझने की क्षमता को विकसित करता है जो व्यक्ति को जीवन की कठिनाइयों से निपटने में मदद करता है। साहित्य के माध्यम से हम एक आदर्शवादी, संवेदनशील और परिष्कृत जीवन जी सकते हैं। यह जीवन को एक नया दृष्टिकोण, आशा और विश्वास पैदा करता है, जिससे मनुष्य निराश और आशंकाओं पर विजय पा सकता है। यह समाज की संस्कृति और मूल्यों का प्रतिबिम्ब है, जो हमें आत्म–अन्वेषण का अवसर देता है। यह हमें अपनी यादों और अनुभवों का उपयोग करने एवं उसके नये अर्थ निकालने में मदद करता है। इसका अध्ययन और मनन जीवन में उत्कृष्टता लाता है और व्यक्ति को शालीन एवं शिष्ट बनाता है।

समाज के नवनिर्माण में साहित्य की भूमिका के परीक्षण से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि साहित्य का स्वरूप क्या है और उसके समाज–दर्शन का लक्ष्य क्या है? 'हितने सह इति सष्टि समूह तस्याभावः साहित्यम्।' यह वाक्य संस्कृत का प्रसिद्ध सूत्र–वाक्य है, जिसका अर्थ होता है साहित्य का मूल तत्त्व सबका हित साधन है। मानव अपने मन में उठनेवाले भावों को जब लेखनीबद्ध कर भाषा के माध्यम से प्रकट करने लगता है, तो वह रचनात्मक ज्ञानवर्धक अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य कहलाता है। साहित्य का समाज–दर्शन शूल–काँटों जैसी परंपराओं और व्यवस्था के शोषण रूप का समर्थन करनेवाले धार्मिक नैतिक मूल्यों के बहिष्कार से भरा पड़ा है। जीवन और साहित्य की प्रेरणाएँ समान होती हैं। समाज और साहित्य में अन्योन्याश्रित संबंध होता है। साहित्य की पारदर्शिता समाज के नवनिर्माण में सहायक होती है जो खामियों को उजागर करने के साथ उनका समाधान भी प्रस्तुत करती है। समाज के यथार्थवादी चित्रण समाज के प्रसंगों की जीवन्त अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य समाज के नवनिर्माण का कार्य करता है। दरअसल साहित्य संस्कृति का एक अंग है। सभ्यता, रीति–रिवाज, आस्था–विश्वास और अभिव्यक्ति (साहित्य एवं कला) के बीज संस्कृति में ही छिपे रहते हैं। कलाकार–साहित्यकार अपनी दृष्टि, संवेदना और अभिव्यक्ति कौशल के बल पर इस बीज को कलात्मक काया प्रदान कर विशाल वट वृक्ष बना देता है, इसे हम कलाकृति और साहित्य की संज्ञा से अभिहित करते हैं। कलाकार अपने कथ्य की आवश्यकता के अनुरूप ही शिल्प एवं विधा का चयन करता है। इसलिए एक श्रेष्ठ रचनाकार की कोई भी विधा कथ्य एवं संवेदना के स्तर पर पूर्णतः संप्रेष्य हुआ करती है। दूसरे, समाज में जो कुछ चल रहा होता है, वह धर्म, पंथ और राजनीति के अनुरूप ही नहीं होता, बहुधा इसके विपरीत भी होता है। साहित्य इन विपरीतताओं को समझकर संगति बिठाने का तार्किक एवं संवेदनशील प्रयत्न करता है।

आज हमारे जीवन में हर जगह उथल–पुथल मचा हुआ है। इनके प्रमुख कारण हैं–अर्थ एवं प्रजाति (रेस) केन्द्रित व्यवस्था तथा उपभोक्तावाद की बढ़ती प्रवृत्तियाँ। ऐसा नहीं कि इसके पहले समाज में कभी उथल–पुथल नहीं हुआ, लेकिन तब शायद विज्ञान व तकनीक का इतना विकास नहीं हुआ था, जिससे कि विश्व की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं भौगोलिक सत्ता का केन्द्रीयकरण अथवा दबावीकरण की निर्मिति हो पाती। आज स्थिति एकदम भिन्न है। कथित विकास की जमीन पर विनाश का रेगिस्तान पसरता चला जा रहा है। कुछ देशों के छोटे से समूह अथवा समूहों की सुख–समृद्धि एवं भोग के लिए बाकी दुनिया के धन–जन परवान चढ़ते जा रहे हैं। सृष्टि, मनुष्य और अन्य जीवों का रिश्ता सहज स्वाभाविक होने के वजाय अस्वाभाविक एवं शोषणमूलक बन गया है। जबकि संस्कृति हमारी पूरी जीवन–दृष्टि की प्रकट अभिव्यक्ति होती है। सो, यह कहने की जरूरत नहीं कि उपयुक्त वजहों से संस्कृति का संकट गहराता जा रहा है और साहित्य में प्रारंभ से ही युग चेतना की अभिव्यक्ति होती रही है। इसलिए साहित्य अपने देश एवं राष्ट्र की चिंतनधारा का प्रमाणिक वृत्त प्रस्तुत करता है। साथ ही युग की आकांक्षाओं को प्रतिध्वनित करके मानव को सामयिक प्रेरणा देने के साथ–साथ उसके कर्तव्य बोध को भी जाग्रत करता है। यह भी सच है कि साहित्य के द्वारा ही संसार के महान क्रांतियों का जन्म हुआ है, परन्तु इसके साथ यह भी कहा जा सकता है कि साहित्य परंपरा का वाहक ही नहीं, उदात्त आदर्शों का प्रतिष्ठापक एवं संरक्षक भी होता है। अतः साहित्य में परंपरा एवं युगीन आकांक्षाओं का विवेकपूर्ण सामंजस्य होना चाहिए। ऐसे तो साहित्य किसी देश के अतीत का वाहक, वर्तमान का प्रतिनिधि एवं भविष्य का निर्माता होता है। इसलिए उसमें अतीत की उपलब्धियों के अलावा वर्तमान के सत्य एवं भविष्य की निर्णयात्मक प्रेरणाओं का सही तारतम्य होना आवश्यक है। इतना ही नहीं उसमें मानव–भावनाओं का सौंदर्य भी अंकित होना चाहिए, ताकि उससे प्रभावित होकर पाठकगण उसकी प्रेरणा को ग्रहण कर सके। इस प्रकार साहित्य उस दर्पण की भाँति होता है, जिसमें युग चेतना स्वतः ही प्रतिबिम्बित होती रहती है।

साहित्य युग का प्रतिबिम्ब ही नहीं, युग का प्रणेता, परंपरा का वाहक एवं साहित्यकार की निजी संवेदना का उकासन भी है। अतः साहित्य युग का अनुयायी ही नहीं रहता। उसमें युग की अनुकूलता और अनुगुणता भी रहती है। साथ ही उसमें युग का प्रभाव अनेक तत्त्वों के साथ मिलकर नवीन एवं जीवंत बन जाता है। यह सत्य है कि साहित्यकार अपने युग की राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है, लेकिन इसका यह अभिप्राय नहीं कि साहित्यकार का अपना व्यक्तित्व ही नहीं होता, बल्कि साहित्यकार अपनी अनुभूतियों में सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का समन्वय करता है और उसी के फलस्वरूप साहित्य का सृजन होता है। सधन्यवाद!

समीक्षा :

रूकती नहीं है ज़िन्दगी : पथरीले यथार्थ की जमीं पर उगा गुलमोहर है

कुलदीप शर्मा
मून विल्ला बसोली रोड़ रक्कड़ कलोनी
ऊना (हि.प्र.)
मोबाइल–7018402984

किसी भी औपन्यासिक कृति के कथानक का पूरा वितान रचने के लिए उपन्यासकार कथानक की माँग के अनुरूप नायक की खोज करता है। नायक अगर काल्पनिक हो, तो कथानक में वर्णित घटनाक्रम को यथार्थ जैसा बनाना थोड़ा मुश्किल हो जाता है। कई बार उसे अपने नायक की चारित्रिक विशेषताओं में कल्पना का रंग चढ़ाना पड़ता है। उपन्यास में कथा को गति देने के लिए कई अतिरिक्त काल्पनिक या वास्तविक पात्रों का समावेश करना पड़ता है। ऐसी रचना समय के खुरदुरे यथार्थ के धरातल पर उतरने से चूक जाती है। पर अपने लोक और लोकसंस्कृति से जुड़ा हुआ रचनाकार जीवन की कठोर जमीन पर अपने आसपास के चरित्रों में ही अपने नायक उपनायक ढूँढ लेता है और एक रिपोर्टर की तरह वह जिन्दगी का ऐसा दस्तावेज तैयार कर देता है, जो कल्पना से भी कहीं अधिक रोमांचक बन जाता है। जिन्दगी को इतनी निकटता से देखना–परखना और संवेदना के स्तर पर उससे जुड़ना, किसी भी रचनाकार के लिए उसकी रचनात्मकता का चरम बिंदु होता है। ऐसी स्थिति एकबारगी उसे लेखकीय तुष्टि और आत्मसुख से भर देती है। कई बार अपने बिलकुल आसपास इस तरह के पात्र मिलते हैं, जो आपकी संवेदनाओं, विश्वासों और जमे हुए अनुभवों को झकझोर देते हैं, साथ ही एक चुनौतीपूर्ण लेखकीय संभावना आपके समक्ष खड़ी कर देते हैं। कुछ जीवट वाले लेखक इस चुनौती को स्वीकार करते हैं। एक यथार्थ जो कल्पना से भी कहीं अधिक अजनबी होता है, उनके सामने आकर उन्हें ललकारता है। हमारे आसपास का जीवन ऐसी कहानियों से भरा पड़ा है, पर उनसे जुड़ने के लिए, उन्हें देखने के लिए लोकधर्मी दृष्टि की दरकार रहती है जो हर लेखक के पास नहीं होती। एक ऐसे लेखक जिन्होंने अपनी रचनाओं में कन्डी क्षेत्र की आंचलिकता, सुन्दरता और दुर्गम जीवन स्थितियों को सहजता से चित्रित किया हो, इस तरह का जोखिम उठा सकता था। डॉ. धर्मपाल साहिल की आर्द्र संवेदनाएँ पत्थर में भी पानी की टोह ले लेती हैं, रुकती नहीं है जिन्दगी एक पथरीले यथार्थ की जमीन पर उगा हुआ गुलमोहर है।

'रुकती नहीं है ज़िन्दगी ' इस कृति के रचनाकार डॉ धर्मपाल साहिल पता नहीं क्यों, पर मुझे लगता है धर्मपाल साहिल के स्थान पर किसी अन्य रचनाकार का क्रूर यथार्थ से टकराव शायद कोई वितृष्णा पैदा कर देता या शायद मुट्ठी भर मौखिक संवेदना जताकर काम चला लेता कि ठीक है ३५ वर्षों से बिस्तर पड़े एक दिव्यांग कवि ग़ज़लकार के लिए इतना भर काफी है, जिसे सलीके से स्कूली पढ़ाई भी पूरी करने का मौका जिन्दगी ने नहीं दिया और जो एक के बाद एक त्रासदियों से जूझकर बिस्तर से जा लगा और जो थोड़ा–बहुत लिखता है, उसके लिए सहानुभूति जता देना भर पर्याप्त है, ठीक है, पर धर्मपाल साहिल जरा दूसरी मिट्टी के बने हैं। इन्होंने न केवल अपने उपन्यास के नायक से अपनी हर मुलाकात को उसके जीवन की कटु सच्चाइयों की खाइयों में गहरे और नजदीक से झाँकने का साहस किया, बल्कि हर बार उन्हें रुकती नहीं है जिन्दगी के नायक में एक ऐसा योद्धा दिखा जो निरंतर लड़ता रहा, लड़ता रहा और फिर अंत में जीत गया। समझा जा सकता है कि 'रुकती नहीं है ज़िन्दगी' को लिखना किसी भी अर्थ में धर्मपाल साहिल के लिए आसान नहीं रहा होगा; क्योंकि इस जीवन को जीना पारस उर्फ परसा के लिए बेहद मुश्किल था। घृणा, क्रूरता, शोषण, विद्वेष, सामाजिक उपेक्षा, दरिद्रता, मक्कारी, विश्वासघात और गरीबी से घोर संघर्ष के तमाम नकारात्मक तत्त्वों के बीच से साहस, शौर्य, दया, रचनात्मकता और प्रेम के उदात्त मोतियों को चुनना और हर प्रतिकूलता के खिलाफ ज़िन्दगी की बाँह पकड़कर उसे विजयी घोषित करना सचमुच एक कठिन कार्य है। इस कृति के नायक सुभाष पारस ने अपनी शारीरिक अक्षमताओं, निर्धनता, जातिगत प्रताड़नाओं और वर्ग वैमनस्य के चलते जीवन में पल–पल जो सहा है, उसे पूरी शिद्दत के साथ सत्यकथा की तरह एक किताब के पन्नों पर उतारना, लेखन की कठिनतम परीक्षाओं में से एक रहा होगा। कहना न होगा कि धर्मपाल साहिल इस परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हुए हैं। सुभाष पारस के बारे में हम जानते थे कि वे जिला मुख्यालय से कुछ देर अपने छोटे से गाँव में रहते हैं और पूर्ण विकलांगता के बावजूद अपनी सृजनात्मकता के चलते देश–विदेश में ग़ज़लगो के रूप में जाने पहचाने जाते है। पर विकट जीवन स्थितियों से जूझते हुए वे एक नायक के रूप में जीवटता की मिसाल बन गये हैं जो हमें पता न था। यह हमारी दृष्टि की सीमा थी, धर्मपाल साहिल इस सीमा का उल्लंघन कर उस दिव्यांग की ज़िन्दगी की भीतरी बोहों में उतरकर ज़िन्दगी के पक्ष में एक नई इबारत लिखने के लिए जूझ रहे थे। यह आख्यान ज़िन्दगी की तमाम विषमताओं को एक बड़े समावेशी तनाव वृत्त का हिस्सा बनाता है। इस कृति में केवल पारस या परसा के ज़ीवन संघर्ष ही नहीं, बल्कि उसके हवाले से पूरे समाज की विसंगतियों पर एक तीखा तंज उभरता है। धर्मपाल साहिल के लिए ऐसा लिखना और पारस के लिए ऐसा होना जीवन के लिए एक अपराजेय प्रेम की माँग करता है। इस रचना में यह प्रेम अस्फुट स्वरों में ही सही हर जगह मुखर है।

लेखक ने पाठक की सुविधा के लिए पुस्तक को छोटे– छोटे और बहुत अर्थपूर्ण अध्यायों में बाँटा है। ये अध्याय जैसे परसा की जीवन–यात्रा के पड़ाव हैं। हर पड़ाव आपको परसा से और अधिक प्रगाढ़ परिचय की ओर ले जाता है। ऐसे ही हर पड़ाव जीवन की नई–नई सच्चाइयों से भी सामना करवाता है।

पहला अध्याय है डेरे के फेरे। यहाँ फेरे द्विअर्थी शब्द की तरह रखा गया है। फेरे यानी विज़िट और फेरे यानी घुमाकर यातना देना। सोचिये कि दोनों अर्थ यहाँ पर माकूल हैं। डेरे में पारस का आना उसके मक्कार जीजा के षड्यंत्र का प्रतिफल है। ज्यादातर डेरे आसपास के लोगों की अंधश्रद्धा, अज्ञान और अनपढ़ता के कारण चलते है। बड़े सुनियोजित ढंग से एक आदमी से दूसरे आदमी और एक गाँव से दूसरे गाँव तक डेरे के चमत्कारों का प्रचार किया जाता है। डेरे की अंदरुनी व्यवस्था बाहरी आडम्बर से अलग बहुत अमानुषिक और भयावह होती है। इस डेरे में भी डेरे के मालिक बाबा का हुकुम और अत्याचार चलता है, जिस पर कहीं कोई प्रश्न नहीं उठता। तीन–तीन हत्याएँ कर देने के बाद भी बाबा आराम से लोगों की अंध श्रद्धा के चलते जेल से छूट जाता है और डेरे के स्थायी वाशिंदों का शोषण, उत्पीड़न अबाध चलता रहता है। परसा के शरीर के अंदर भीतर ही भीतर एक रोग पाँव पसार रहा है, जिसके सम्भावित इलाज के लिए उसे यहाँ भेजा गया है। परसा डेरे का एक मात्र ऐसा वाशिन्दा है जो मानसिक रूप से स्वस्थ है और नतीजतन वही एक ऐसा है जो डेरे में हो रहे शोषण उत्पीड़न को स्पष्ट देख सकता है। परसा टाँगों से लाचार था, पर शरीर का ऊपरी अर्धभाग पूरी तरह सक्रिय और स्वस्थ था। डेरे में दोपहर के समय परसा की रोटी बनाने के लिए जरूरत होती, तो कोई परसा को उठाकर भट्ठी के पास रख देता और परसा रोटियाँ तवे पर दक्षता से बदलता रहता। जैसा प्रचारित किया गया था कि परसा बाबा के जन्तर–मन्तर या झाड़–फूँक से ठीक हो जाएगा, वैसा कुछ नहीं हुआ। होना भी नहीं

था। उलटे परसा की बीमारी ठीक होने की बजाए उग्रतर होती चली गयी। क्योंकि परसा अब डेरे के लिए पूरी तरह अनुपयोगी होता जा रहा था, सो पारस के लिए घर वापिसी के अलावा कोई विकल्प न था। घर आने पर उसने देखा कि इस दौरान उसके जीजा ने घर की थोड़ी–बहुत सम्पत्ति जो भी थी, लूट ली थी. परसा की साइकिल, घर के पैसे, भैंस और बीमा की किश्तें सब उस जीजा ने हड़प ली थीं। रिश्तों की सारी शुचिता किस तरह स्वार्थ और धनलिप्सा की भेंट चढ़ जाती है!

विधाता ने परसा का भाग्य पता नहीं कितने निर्मम हाथों से लिखा था।

परसा घर वापिस आता है, तो पूरी तरह विकलांग होकर, एक अच्छी बात यह थी कि चाहे झूठ ही सही, पर परसा को लगता था कि उसके शरीर के निचले हिस्से को नितांत अकर्मण्य कर देनेवाला यह रहस्यमयी रोग महज कुछ दिन का है। वह सोचता कि वह दिन दूर नहीं, जब वह अन्य बच्चों की तरह अपने पैरों चलकर स्कूल जाने लगेगा। वह बिस्तर पर लेटे लेटे अक्सर यही कल्पना करता कि वह स्कूल जा रहा है, अध्यापक उसे पहले की तरह कक्षा में प्रथम रहने पर शाबाशी दे रहे हैं, वह तेज पेडल मारता हुआ तेजी से साइकिल चढ़ाई पर ले जा रहा है। वह दूसरे बच्चों संग ग्राउंड में खेल रहा है। पढाई में तेज, कक्षा में अव्वल रहनेवाला परसा अपनी अपाहिज अवस्था को कभी अपने मन पर हावी नहीं होने देता है और इस वजह से कभी अवसादग्रस्त नहीं हुआ। सहपाठिन नीलमणि अभी भी कच्ची उम्र के प्यार की गुनगुनी धूप की तरह उसकी अँधेरी ज़िन्दगी को रोशन किये हुए है। नीलमणि एक दिवास्वप्न है, जो उसके जेहन में सुदूर सम्भावना की तरह जिंदा है। दरअसल परसा और मणि की यह प्रेम गाथा बहुत ही महीन रेशों से बुनी हुई है। किशोर वय का परस्पर आकर्षण जो शायद प्रेम की परिभाषा पाने से पहले ही परसा के रोग से शय्याग्रस्त होने और दोनों के अलग–अलग जाति और आर्थिक पायदानों पर होने के कारण फेड आउट हो जाता है। परसा रोगग्रस्त न भी होता, तो भी यह प्रेम कई कारणों से परवान नहीं चढ़ सकता था। परसा जब कई महीनों से सिर्फ बिस्तर पर ही पड़ा रहता है, तो किसी एक दिन नीलमणि अपने माता–पिता के साथ परसा के घर आती है, तो स्वाभाविक रूप से परसा सोचता है कि वह उसका हाल जानने आई है। उसे देखते ही परसा के किशोर मन में जो भावनाएँ उठती हैं, उनका अवसान भी अगले ही क्षण हो जाता है। जब उसके पिता कहते हैं कि वास्तव में वे तो उनके घर वोट माँगने आए हैं मणि को साथ लेकर, परसा के भीतर छन से उसका दिवास्वप्न टूटता है, जिसकी आवाज सिर्फ परसा को सुनाई देती है। मणि तो अपने माता–पिता के साथ जैसे आई थी वैसे ही लौट जाती है।

पारस–मणि का यह परस्पर आकर्षण स्कूल के आरम्भिक दिनों में ही पनपा जब परसा एक जहीन और उर्जावान छात्र के रूप में स्कूल जाता था। परसा और मणि के बीच पढ़ाई को लेकर जो स्पर्धा या सहभागिता थी, उसी से उनके दिलों की कच्ची मिट्टी में प्रेम के अंकुर फूटे होंगे। एक तरह से देखा जाए, तो परसा की संघर्षपूर्ण जिन्दगी के मरुस्थल में बस उसका मणि के प्रति प्रेम ही एकमात्र शाद्वल है। आठवीं कक्षा तक उनके कक्षा में अव्वल आने की मीठी सी होड़ थी और सम्भवतः एक दूसरे के प्रति जो सहज आकर्षण था, वह कभी एकतरफा प्यार तो कभी कड़ी उम्र की फैसिनेशन जैसा कुछ भासता है। पर परसा के लिए यह उसके तमाम संघर्षों विपत्तियों के बीच एक सुखद अनुभव की तरह है जिसे वह बार–बार अपने भीतर उतरते हुए देखता है। जिस प्रेम को उसने तमाम विषमताओं के चलते अपने अंतर्मन में अक्षुण्ण रखा था वही कालान्तर में पारस की ग़ज़लों कविताओं में उभरकर आया होगा। प्रेम की मिठास में वह ताकत है जो सारी कड़वाहटों पर भारी पड़ती है।

रिश्तों की टूटन, पारिवारिक ताने–बाने को किस तरह तहस–नहस कर देती है, यह हमारे समाज की ऐसी विडम्बना है जो हर दूसरे घर की कहानी लगती है। परसा का बड़ा भाई पढ़ लिखकर अपनी पृष्ठभूमि से पूरी तरह नाता तोड़ लेता है और एक अच्छी नौकरी करते हुए, सुख–सुविधा का जीवन जीते हुए, अपनी ससुराल वालों के बहकावे में आकर, अपने माता–पिता, भाई–बहनों को विकट विपन्नता में जीने के लिए छोड़ देता है। इतना ही नहीं, वहाँ जालन्धर में इलाज की उम्मीद में गये हुए परसा और माँ को बुरी तरह अपमानित करता है। कहता है–''तुम्हें चप्पल पहनकर शहर नहीं आना चाहिए था।'' परसा अपने कटु अनुभवों को कड़ी–दर–कड़ी जोड़ते हुए अपने आसपास की दुनिया को समझने लगा था। नये जूते खरीदने के लिए, पुलिया पर काम करते समय सीमेंट की बोरियों में रेत भरता ठेकेदार और उसमें जे. ई. की मिलीभगत देखकर दुनियादारी और ईमानदारी के बीच की गहरी खाई को देखकर उसके मन में जुगुप्सा भर गयी थी। जमीन जायदाद के झगड़े अक्सर गाँवों में मारपीट, खून–खराबा यहाँ तक कि हत्या–जैसी परिणति तक पहुँच जाते हैं। भाग्य की विडम्बना कहिये या समाज के ताकतवर लोगों की निष्ठुरता परसा को निर्दोष होते हुए भी कानूनी दाँव–पेचों में उलझा दिया जाता। हद तो तब होती है जब पड़ोसी राज्य पंजाब में उग्रवाद की समस्या के चलते गाँव के मोतबर (मातवीर) लोग परसा के घर वालों के खिलाफ एक झूठी शिकायत करते हैं कि इनके घर में पंजाब के कुछ वांछित उग्रवादी आकर छुपे हुए हैं। पुलिस की छापेमारी, प्रताड़ना, रिश्वत की माँग, कोर्ट–कचहरी के चक्कर, गाँव के ताकतवर लोगों के षड्यंत्र और इस पर हाड़तोड़ गरीबी से उपजी असहायता, परसा के किशोर मन पर कितने घाव लगे, किसी ने हिसाब नहीं रखा। गाँव के रसूखदार लोगों में परसा का नम्बरदार चाचा एक ऐसा खलनायक था जिसके निशाने पर हमेशा परसा का परिवार रहा और मुसीबतों और जिल्लत की खेप–दर–खेप उनके घर आती रही। सच्चाई, शराफत, ईमानदारी आदि की कहीं कोई कीमत नहीं है। इसके बावजूद परसा और उसके घर वालों ने कभी इनका साथ नहीं छोड़ा। अलबत्ता भाग्य उनका साथ कब का छोड़ चुका था। उन्हीं दिनों परसा को यह अनुभव भी हुआ कि देवी–देवताओं के आगे नाक रगड़ने से वे बुरे वक्त में मनुष्य का साथ नहीं देते। धार्मिक आस्थाएँ किसी भी अत्याचार के आगे दो कौड़ी की साबित होतीं हैं।

परसा अपनी विकलांग असहाय अवस्था में जीने व जीते चले जाने के व्यर्थताबोध से बुरी तरह ग्रस्त है और हर समय अपने लिए भगवान् से मौत की याचना करता है। उसने देख लिया था कि इस रहस्यमयी बीमारी से निजात पाना असम्भव है और इस तरह बिस्तर पर पड़े–पड़े हर चीज के लिए दूसरों पर मोहताज होकर तो जीवन जितना भी लम्बा है, नहीं काटा जा सकता। तभी मृत्यु बाघ के रूप में आती है और परसा को बिलकुल पास से छू कर गुजर जाती है।

मैंने अपने छात्र–जीवन में जिम कॉर्बेट की पुस्तक 'मैन ईटर्स ऑफ कुमाओं' पढ़ी थी। उस पुस्तक का रोमांचकारी प्रभाव कई वर्ष तक तन–मन पर तारी रहा था। डॉ. धर्मपाल साहिल ने 'रुकती नहीं जिन्दगी' में जो बाघ के आने और दरवाजे पर रुके रहने, सामने बिस्तर पर परसा के शरीर को आहार की तरह परखने और फिर परसा के ऊपर से छलाँग लगाकर पिछले दरवाजे से निकलकर किसी जंगली जानवर का पीछा करने का जो वर्णन किया है, वह शायद जिम कार्बेट को भी कहीं पीछे छोड़ देता है। इसी घटना से परसा मृत्यु के इतना निकट से अपनी जिन्दगी बच जाने के पीछे किसी उद्देश्य की सम्भावना देखता है। उसे लगता है कि अगर उसे मृत्यु–याचक होने के बावजूद ईश्वर ने या प्रकृति ने बचा लिया है, तो जरूर उसके लिए उसकी

कोई योजना रही होगी। शारीरिक बल, सत्ता बल, धनबल, बुद्धिबल, कुछ तो भगवान् ने उसे दिया होता। कुछ भी तो उसके पास नहीं है। सिर्फ यह नामुराद जिन्दगी है, जो न होने जैसी है। तभी उसे लगता है कि बुद्धिबल तो उसके पास है ही। यहाँ से उसकी सोच में एक रूपांतरण आता है और वह आसपास से अपनी माँ से मँगवाकर पुरानी अखबारें पढ़ना शुरू करता है। यहाँ से परसा के पारस बनने की प्रक्रिया शुरू होती है। यहाँ से एक दूसरी किस्म की जद्दोजहद उसके जीवन परिधि में प्रवेश करती है। किलो के हिसाब से रद्दी अखबारें मँगवाकर उन्हें पढ़ना और इस तरह अपने परिवेश, समाज और समय से जुड़ना परसा के लिए एक नितांत नई दुनिया के द्वार खोलता है। यह दुनिया शब्दों की दुनिया है। शब्द जो परसा के लिए रचनात्मकता का गवाक्ष खोलते हैं। शब्द जो कविता, कथा–कहानी, लेख और खबरों के माध्यम से उसके भीतर करवट लेती कल्पनाशीलता को उसके दुःख के साथ जोड़ देते हैं। बाहर की दुनिया की झलक मिलने से उसे यह भी पता चलता है कि अपने दुःख में वह अकेला नहीं है। सारी दुनिया दुःखों से, दुखियों से, अटी पड़ी है। यह भी कि हर आदमी का दुःख उसके स्वयं के लिए दुनिया का सबसे बड़ा दुःख है। मनुष्य की आत्मा तक को तोड़ देनेवाले दुःख से पार पाने का अगर कोई रास्ता है, तो वह शब्दों से होकर गुजरता है।

परसा की बहन सरोज अपने विवाह उपरान्त ससुराल वालों की दहेज लिप्सा और क्रूरता का शिकार हो जाती है और रातों–रात उसका दाह संस्कार कर देने के प्रयास को रोककर ससुराल वालों के खिलाफ करवाई गयी पुलिस में प्राथमिकी किसी काम नहीं आती। पुलिस जैसी है, ठीक वैसी ही यहाँ भी है। उसकी कार्य–प्रणाली को बदलने के लिए सदियों लगेंगी। वह कुछ भी कर सकती है। पीड़ित को दोषी और दोषी को पीड़ित बना सकती है।

दूसरी बहन नीलम का शराबी पति नशे में इतना हिंसक और क्रूर हो जाता है कि मायके यानी परसा के घर आई नीलम को जान से मारने की कोशिश में खुद शराब की ओवरडोज से मौत के मुँह तक चला जाता है। किसी तरह उसे अस्पताल फिर पीजीआई पहुँचाया जाता है। पर वहाँ तीन–चार दिन उपचाराधीन रहकर मल्टीऑर्गन फेल्युर के चलते दम तोड़ देता है। अब पुलिस और नीलम के पति के घरवालों की मिलीभगत से यह परसा का ही परिवार है, जो मुसीबत में फँसता है। सच कहा है गरीबी सब दुखों की माँ है।

आठवीं कक्षा तक तन्दुरुस्त परसा जिस गरीबी, दरिद्रता और पिछड़ेपन को अपनी शारीरिक और बौद्धिक सामर्थ्य के बल पर पछाड़ फेंकने के सपने देखता था, वही अब उसके चारो ओर शिकंजा कसे बैठे थे। फिर ऐसी अवस्था में, अपनों की निष्ठुरता, धोखा, सामाजिक बहिष्कार, उत्पीड़न यह सब तो जैसे परसा की जिजीविषा को ही समाप्त कर देने पर उतारू थे। पर परसा पता नहीं कौन–सी मिट्टी का बना है। भीतर उसके कुछ ऐसा था जो जीवन की त्रासदियों के सामने घुटने टेकने को तैयार नहीं था। उसने रद्दी अखबारें और माँगी हुई पुस्तकें पढ़ते–पढ़ते बिस्तर की चौहद्दी तक सीमित रहते हुए भी अपने पंख पसारने शुरू किये। अब उसे उर्दू पढ़ना सीखना था। एक लुप्त होती हुई भाषा के प्रति उसका यह प्रेम जागना स्वयं में किसी अचम्भे से कम नहीं था और यह तब, जब उसके आस–पास उर्दू जाननेवाला तक कोई नहीं था। मानों परसा कह रहा हो–''मेरे पंख मत देखो, मेरी परवाज़ को देखो, आसमान से कह दो और ऊँचा हो जाए।''

'रुकती नहीं है ज़िन्दगी' वास्तव में जिन्दगी की कहानी है, एक ऐसी ज़िन्दगी जो न होने के कगार पर है, पर खुद को बड़ी मुश्किल और मुस्तैदी से बचा ले जाती है। ज़िन्दगी का हर किस्म की मौत के सामने लहराता हुआ परचम है। ज़िन्दगी की जीत का लोकगीत है। परसा से पारस बनने–बनाने की शल्यक्रिया है। समाज के चेहरे से नकाब उतारने का अभियान है। जुल्म के खूँखार जबड़ों से मनुष्य को साफ बचा ले जाने की निर्णयात्मक लड़ाई का उद्घोष है। यह दया के खिलाफ करुणा की स्थापना का पर्व है। यह समय के सही जगह थम जाने की आवाज़ है।

पूरी पुस्तक में हर घटना–दुर्घटना दुःख की एक तीखी गंध लिये आती है यह दुःख परसा को भीतर–ही–भीतर तोड़ता है, सालता है, पर अंततः पारस बनाता है। परसा अखबारें और माँगी हुई पुस्तकें पढ़कर खुशवंत सिंह की लेखन–शैली से प्रभावित होकर अपने मनोभावों को व्यक्त करने की कला सीखता है और सहज ही उसके उदगार ग़ज़ल बनकर कागज की छाती पर उभरने लगते हैं। परसा अब पारस बना बिस्तर की हदबंदी से बाहर ऑनलाइन महफिलों का हिस्सा बन जाता है। कुछ पत्रिकाएँ उसकी ग़ज़ल, कविता आदि को छापने की पहल करती हैं। फिर एक फ़रिश्ता आता है प्रोमिला अरोड़ा, उसके साथ कुछ और फ़रिश्ते आ जुटते हैं। साझे प्रयासों से पारस का ग़ज़ल संग्रह छपता है। ख्याति आस्माँ के रास्ते विदेशों तक जाती है और वहाँ से ऑनलाइन शिरकत के लिए आमंत्रण आने लगते है। आप पूछेंगे कि नीलमणि का क्या हुआ?

नीलमणि की शादी हो गयी थी कांगड़ा में। लगभग पुस्तक के अंतिम पन्नों में पता चलता है कि वह अपने पति से नाराज होकर विदेश चली गयी है और बीस वर्षों से अपने पति के साथ भी किसी तरह के संवाद में नहीं है। उसका पति अपनी ससुराल यानी पारस के गाँव पहुँचता है, तो वह तबतक प्रसिद्ध हो चुके पारस से मिलने आता है। उससे आग्रह करके वह अपनी पत्नी के लिए उससे एक प्रेम–पत्र लिखवाता है, जिसमें पारसमणि के लिए अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हुए लौट आने का मार्मिक आग्रह करता है और मणि यानी प्रिया लौट भी आती है। पारस के लिए वह दिन अनेकार्थों में संतोष और सुख का दिन बन जाता है।

उपन्यास में वर्णित घटनाएँ और पात्र पारस के जीवन वृत्त के पूरक हैं, हालाँकि माता–पिता को छोड़कर हर पात्र प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पारस के दुःख का कारक बना है, वह कहीं भी किंचित् मात्र भी कल्पनाप्रसूत नहीं दिखता। है भी नहीं, क्योंकि परसा एक जीवित पात्र है, तो अपने बारे में उसकी जो भी भावनाएँ रहीं हैं, लेखक ने उन्हें ही अपने केनवस पर ज्यों–का–त्यों चित्रित कर दिया है। 'रुकती नहीं है ज़िन्दगी' का हर पन्ना हर शब्द ज़िन्दगी को किसी धर्मग्रंथ की तरह बाँचता है।

'रुकती नहीं है ज़िन्दगी' को जब पढ़ा, तो एकाएक यह तय नहीं कर पाया कि इस पुस्तक का लेखक बड़ा है या इसे जीने वाला नायक? यह पुस्तक आपको जीवन की एक नई परिभाषा सिखाती है। यह आपको अपने अंधेरों से सतत युद्ध करके अपनी रौशनी तलाशने का ढंग सुझाती है। यह अंधेरों की यथार्थता से ही आपका सामना नहीं करवाती, बल्कि यह उन्हें चुनौती देकर अपने सूरज उगाने का भी आह्वान करती है। यह आपको अपने निजी दुःखों के कटघरे से बाहर ज़िन्दगी के सौन्दर्य से आपका परिचय करवाती है।

परसा का पारस बनना कतई आसान नहीं था। बहुतों को यह असम्भव लग सकता है। उसके आस–पास कुछ भी या कोई भी ऐसा नहीं था, जो उसपर तरस खाकर उसके जीवन संघर्ष को कुछ कम करता। उसकी विकलांगता असाध्य न होने के बावजूद उपचारहीनता की स्थिति में बढ़ती गयी और साथ ही बढ़ता गया उसके अपनों द्वारा अपनों का शोषण, एक माता–पिता को छोड़कर कोई ऐसा नहीं, जिसने उसके घावों पर नमक न छिड़का हो। परसा के जीवन के अंधेरे इतने क्रूर नहीं थे, जितने उसके आस–पास के लोगों ने बना दिये, यहाँ टूटते सम्बन्धों की तिड़कन की आवाज है। यहाँ अंकुरित होते हुए प्रेम के फेडआउट हो जाने की त्रासदी है। यहाँ चुनावी बिसात है, जहाँ आश्वासनों के दाँव खेले जाते हैं। यहाँ झूठे वायदे है, तिकड़म है, भरभराकर बहती हुई आस्थाएँ हैं, धार्मिक आडम्बर है, प्यार

और उपकार के प्रत्युत्तर में मिलनेवाली उपेक्षा है, सामाजिक बहिष्कार है, राजनीतिक पैंतरेबाजी है, मनुष्य विरोधी प्रथाएँ हैं, पर इन सबके बीच और इन सबके बावजूद यहाँ जीवन का स्पंदन है, जीवन का राग है, जिजीविषा की थरथराती लपट है, विषमताओं के अँधेरे का मुँह चिढ़ाती मशाल है।

परसा की अपंगता, शारीरिक असमर्थता, हर छोटी बड़ी आवश्यकता के लिए दूसरों पर निर्भरता, परसा को वैश्विक स्तर पर एक कवि ग़ज़लकार के रूप में पहचान दिलाने से नहीं रोक सकी। वे जो सब कुछ होते हुए अवसाद में डूबकर प्रमाद या नशों से अपने जीवन से खिलवाड़ कर रहे है, उन्हें 'रुकती नहीं है ज़िन्दगी' को एक बार पढ़ना चाहिए। उसकी एक प्रति हमेशा अपने पास रखनी चाहिए। शैलेय की एक छोटी–सी कविता है– ''दुनिया के / हताश लोगों से/ मेरा एक ही सवाल / हिमालय बड़ा / या बछेंद्री पाल?'' मैंने बहुत कम किताबें ऐसी पढ़ी है जिनमें जीवन के सौन्दर्य को इतना पूज्य, इतना वरेण्य बनाकर पेश किया गया हो।

दोस्तोवस्की की 'द इडियट', कामू की 'द स्ट्रेंजर', डिकेन्स की 'ओलिवर ट्विस्ट', एमिले जोला की 'अर्थ', इरविंग की 'लास्ट फॉर लाइफ', मंजुला भगत की 'अनारो', कृष्णा सोबती की 'मित्रो मरजानी', रेणु की 'मैला आँचल', अमरकांत की 'जिन्दगी और जोंक' या धर्मवीर भारती की 'गुलकी बन्नो' इस पुस्तक को पढ़ते हुए ये सभी पुस्तकें मेरे जेहन में पुनर्पाठ की तरह आती रहीं। 'रुकती नहीं है जिन्दगी' के लिए यह कोई दम्भ की स्थापना नहीं है। उपर्युक्त पुस्तकों का जिक्र इसलिए आया कि इन सबको पढ़ते समय भी मैंने ऐसी ही एक गहरी बेचैनी महसूस की थी। डॉ. धर्मपाल साहिल के कई उपन्यास मैंने पढ़े हैं। वे एक सिद्धहस्त कथाकार हैं, लेकिन अपने इस जीवनी आधारित उपन्यास में वे अपने पूर्व लिखे में सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ हैं। इस पुस्तक के लिए सिर्फ बधाई नहीं दी जा सकती, उससे अधिक कुछ चाहिए। वे अगर उम्र में मुझसे छोटे होते, तो मैं कहता शाबाश साहिल!

ग़ज़लें

प्रवीण पारीक 'अंशु', रामकृपा कुंज,
बाईपास रोड ऐलनाबाद, जिला सिरसा
(हरियाणा) मो.–9813561237, पिन 125102

फूल–सी मुस्कान होंठों पर सजा लेते हो तुम
और सारे ख़ार दिल में ही छुपा लेते हो तुम

हर तरह के रोग से मुझको बचा लेते हो तुम
ठीक हो जाता हूँ मैं, कड़वी दवा लेते हो तुम

चाहता हूँ, सीख लूँ मैं ये तुम्हारी ख़ासियत
जिसमें हो सबका भला, वो फैसला लेते हो तुम

मानकर फिर रूठ जाना, रूठकर फिर मनाना
इस तरह अपनी मुहब्बत का मज़ा लेते हो तुम

तोड़ देता हूँ मैं अक्सर दिल तुम्हारा बे–सबब
हाय! टूटे दिल में भी मुझको बसा लेते हो तुम

क्यों न जाने, मान जाता हूँ तुम्हारी बात मैं
रूठकर हर काम ही मुझसे करा लेते हो तुम

बात सच्चाई की हो तो साथ देते हो सदा
झूठ हो तो आसमाँ सर पर उठा लेते हो तुम

ये तुम्हारी बात ही अक्सर लुभाती है मुझे
ग़ैर को भी प्यार से अपना बना लेते हो तुम।

2

बर्फ़ के जैसे पिघलती जा रही है
ज़िंदगी की शाम ढलती जा रही है

जी रहा हूँ, साँस चलती जा रही है
ज़िंदगी यूँ ही निकलती जा रही है

वक़्त बीता जा रहा है धीरे–धीरे
रेत मुट्ठी से फ़िसलती जा रही है

धीरे–धीरे शहर की हर एक बिल्डिंग
गाँव के घर को निगलती जा रही है

बोलना तेरा कभी ख़लता था मुझको
अब तेरी ख़ामोशी ख़लती जा रही है

तेल दीये का कभी रित चुका है
हौसले से ज्योत जलती जा रही है

3

दिखे हँसता हुआ बच्चा जहाँ भी
खुदा मौजूद होता है वहाँ भी

निकम्मे लोग ही बैठे हैं जिन पर
बग़ावत कर न दे वो कुर्सियाँ भी

न इतराओ तुम इन बेटों पे इतना
शिखर को छू रही हैं बेटियाँ भी

दिया इस हौसले से जल रहा है
कि अब घबरा उठी हैं आँधियाँ भी

कटा तो पेड़ ही रोया नहीं है
परिंदों का लुटा है आशियाँ भी
मुझे क्या ख़ाक करते याद हो तुम
तुम्हें आती नहीं है हिचकियाँ भी

लिया है ठान उड़ने का जिन्होंने
तो कम उनके लिए है आसमाँ भी।

4

क्या करें, कोई ग़मख़्वार मिलता नहीं
दर्द जो बाँट ले, यार मिलता नहीं

हर गले को यहाँ हार मिलता नहीं
दुनिया में सबको तो प्यार मिलता नहीं

टाँग तो खीचते हैं यहाँ पर सभी
किन्तु कोई मददगार मिलता नहीं

खाने–पीने की हर चीज़ में ज़हर
आजकल कौन बीमार मिलता नहीं

दूध माँ भी पिलाती न रोये बिना
बिन लड़े कोई अधिकार मिलता नहीं

ज़िंदगी की सभी मुश्किलों से भला
कौन है जो कि लाचार मिलता नहीं

मौत को किस तरह हम लगाएँ गले
ज़हर भी तो असरदार मिलता नहीं।

समीक्षा :

माण्डवी के बहाने भारतीय सांस्कृतिक परंपरा पर एक बहस

डॉ. अरूण कुमार वर्मा
व्याख्याता हिन्दी विभाग
जवाहर नवोदय विद्यालय, पदमी
मंडला (म.प्र.) मो. –09754128757

'माण्डवी' श्री राजेन्द्र तिवारी जी का खंडकाव्य है। तिवारी जी बहुमुखी प्रतिभा के घनी रचनाकार है। काव्य, उपन्यास, एकांकी, नाटक, पटकथा एवं नौटंकी विधा को संवर्धित करने में अपना योगदान दिया है। रामकथा हमारी सांस्कृतिक परंपरा रही है। उसी परंपरा की एक पात्र 'माण्डवी' भरत की पत्नी है। इस खंडकाव्य की प्रेरणा कवि को निश्चय ही गुप्त जी की उर्मिला से मिली होगी। गुप्त जी ने उर्मिला, यशोधरा, विष्णुप्रिया एवं कैकेयी के माध्यम से नारी के त्याग को प्रकाश में लाने का कार्य किया है। डॉ. बलदेव मिश्र ने 'साकेत का संत' लिखकर भरत को प्रकाश में लाया है। माण्डवी की तरफ रचनाकारों का ध्यान कम ही गया है। इन्हें प्रकाश में लाने के साथ–ही–साथ नारी अस्मिता एवं अधिकारों का सूत्रपात करते हुए पुरुष प्रधान घेरे पर चोट करते हुए उसके कर्तव्यों को प्रकाशित किया है। तिवारी जी ने इस खंडकाव्य में एक ऐसी नारी पात्र को चुना है, जिसकी ओर तुलसीदास जैसे महान् चिंतक भी सूचनात्मक वर्णन के साथ इतिश्री कर ली है। प्रस्तुत खंडकाव्य में भारतीय आदर्शों के बीच माण्डवी के माध्यम से नारी संवेदना को कुशलता एवं मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। खंडकाव्य सांस्कृतिक युगबोध से ही हमारा परिचय नहीं कराता, बल्कि वर्तमान समस्याओं का हल सांस्कृतिक परंपरा में तलाशने का संकेत देता है। भाषा–शैली और छंदों पर कवि का अधिकार खंडकाव्य को और भी सरस और सहज बना दिया है।

खंडकाव्य की शुरूआत राम वन–गमन के सात वर्ष बाद एक संध्या से होती है, जब तप में समर्पित माण्डवी तुलसी–पूजन में तन्मय अपने पतिदेव के तपव्रत की सफलता का आवाहन करती है–

''पान सी हथेली पर चौमुख लघु दीप धरे
कोरों तक नयनों के मंगलमय कलश भरे
अवधपुरी के अभिनव एक कनक आँगन में
तुलसी पर शीश धरे आवाहन कौन करे?''

भरत के बहुत अनुनय–विनय के पश्चात् रामचन्द्रजी अयोध्या आने को राजी नहीं हुए, तब उनकी पादुका लेकर वापस आकर गुरु वशिष्ठ, माता कौशल्या और प्रभु पद पीठ की आज्ञा से नंदी ग्राम में पर्णकुटी बनाकर जिस तरह का जीवन रामचन्द्र जी वन में व्यतीत करते हैं, उसी तरह का जीवन जीते हैं। इस कथा का सूत्र गो. तुलसीदासजी ने भी 'रामचरितमानस' में दिया है–

राम मातु गुरु पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई।।
नंदिगाँव करि परम कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।"

माण्डवी भारतीय आदर्शों का पालन करती हुई साध्वी जीवन व्यतीत करती है। कवि के अनुसार माण्डवी की यह तप एवं साधना भरत की तरह जीवन व्यतीत कर पत्नी धर्म का पालन करते हुए उन्हें आत्म–बल प्रदान करने के लिए करती है। यदि पत्नी का इस तरह का सहयोग न प्राप्त हुआ होता, तो भरत शायद अपने लक्ष्य की ओर न बढ़ पाते। महाकवि तुलसीदास पर कभी–कभी यह आरोप प्रबल होने लगता है कि उन्होंने सभी पात्रों के साथ न्याय नहीं किया है। उनका झुकाव राम पर ज्यादा था। वे राम–भक्त थे। उन्होंने लिखा है–

''आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम
तेहि के पग की पान हीं तुलसी तनु को चाम।।''

इस परिस्थिति में झुकाव होना स्वाभाविक भी था। 'रामचरितमानस' में तुलसीदासजी लिखते हैं–राम के वन–गमन के समय सीता जी ने तर्क दिया–

''जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।''

इस तर्क पर उन्हें रामचन्द्र जी के साथ जाने की इजाजत मिल जाती है, परंतु उर्मिला के साथ यह नियम लागू नहीं हो सका। उर्मिला को 'साकेत' की रचना करके गुप्तजी ने ऊँचाई प्रदान किया। इसी भाव से प्रेरित होकर तिवारी जी ने 'माण्डवी' खंडकाव्य की रचना की है। 'रामचरितमानस' में माण्डवी का जिक्र सिर्फ विवाह के समय हुआ है–

''तब जनक पाई वसिष्ठ आयसु ब्याह साजि संवारि कै
मांडवी श्रुतकीरति उर्मिला कुंवारि लई हंकारि कै।।
कुस केतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख शोभामई
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई।''

माण्डवी का आत्मबल, व्रत, नियम–संयम एवं समर्पण साकेत की उर्मिला को भी पार कर जाता है। 'साकेत' में जहाँ उर्मिला यह कहते पायी जाती है–

''मुझे फूल मत मारो
मैं अबला बाल वियोगिनी
कुछ तो दया विचारो।''

वहीं माण्डवी–

''जब इन्द्रिय गति का संप्रेषण
अंतर को उन्मुख होता है
तब आत्मा हो जाती विराट
फिर नहीं कभी दुःख होता है।'' का उद्घोष करती है।

माण्डवी भारतीय सांस्कृतिक परंपरा की उपासिका है। तिवारी जी ने भारतीय नारी के स्थापित मूल्यों को अग्रसारित करने का प्रयास किया है। सांस्कृतिक जड़ों का आधार बहुत गहरा एवं वैज्ञानिक है। सामाजिक समन्वय एवं सुखमय जीवन के लिए इसकी महती आवश्यकता है। इससे अन्यत्र भटकाव हमें सुविधाओं के पास तो ला सकता है, परंतु सुखों से दूर कर देगा। इस तथ्य को स्वीकार करते हुए खंडकाव्य की भूमिका में कवि लिखता है–''इस चरित प्रधान रचना की कथा–वस्तु का आधार 'रामचरितमानस' एवं अन्य ग्रंथों से प्राप्त वे अल्प सूत्र हैं, जिनमें इस पात्र का धुँधला–सा आकार ही उभरता है। इस अस्पष्ट आकार में रंग भरने के लिए मैंने कल्पना, युग संदर्भ और भारतीय नारी के स्थापित मूल्यों का उपयोग किया है।''

माण्डवी तर्कशील एवं विचारवान चरित्र की है। आपसी रिश्तों के प्रति वह बहुत ही सकारात्मक एव सतर्क है। पति के आत्मबल को बढ़ाने के लिए जहाँ वह तपस्विनी है, अपराधबोध से ग्रस्त माता कैकेयी के कृतित्व को महिमामंडित करती है। उन्हें सान्त्वना देते हुए कहती है कि माँ, तुमने कोई गलत कार्य नहीं किया है। इससे तो अखंड भारत की विराट् परिकल्पना को बल मिलेगा। यदि ज्येष्ठ अवध के राजा होते, तो भारत का राज्य सुदूर

दक्षिण तक न फैलता। तुलसीदास की दृष्टि में कैकेयी इतनी उदारता की हकदार नहीं थी, परंतु विवेच्य खंडकाव्य में जहाँ एक ओर माण्डवी के हृदय की विशालता के दर्शन होते हैं, वहीं दूसरी ओर आमजन में भी कैकेयी के प्रति सहानुभूति जगती है। माण्डवी के वक्तव्य देखिए–

''ज्येष्ठ को वनवास देकर
दिया है रामत्व तुमने
त्याग ममता देश को ही
दिया पूर्ण महत्व तुमने

ज्येष्ठ यदि वन को न जाते
राज्य कोशल का चलाते
प्रश्न फिर इतने न उठते
देवता वे बन न पाते।।''

माण्डवी का चरित्र सामंजस्य की प्रतिमूर्ति है। जहाँ वह परिवार के साथ सामंजस्य बिठाने में सफल हुई है, वहीं बाहर के लोगों के प्रति भी समन्वय को लेकर सजग रही है। कौशल्या के साथ उसके संबंध सरस है, तो कैकेयी को अनुताप से मुक्ति दिलाती है। उर्मिला को जीवन का संदेश देकर बड़े होने के उत्तरदायित्व का निर्वहन करती है, तो एक दलित के साथ भी समन्वय स्थापित करती है। एक पक्षी युगल को बाज के चंगुल से छुड़ाकर न्यायप्रियता का भी परिचय देती है। बाज के बध को देकर उर्मिला ने पूछा कि दीदी, तुम्हारा हृदय तो गंगा के समान निर्मल है, तुमने धनुष–वाण कैसे उठा लिया? माण्डवी का उत्तर–पक्षी हिंसक था। वह पक्षी युगल पर अत्याचार कर रहा था। मुझे सत्य और अहिंसा वंदनीय है। माण्डवी का जीवन–संदेश कामायनी की भावधारा के साथ आगे बढ़ता है–''औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ / अपने सुख को विस्तृत कर लो सब को सुखी बनाओ।'' इसी भावों से समर्पित माण्डवी का कथन देखिए, उर्मिला से कहती है–

''कर लो अनुजे तुम आत्मसात
जन की पीड़ा से प्रबल घात
तप–तप कर शुद्ध बने कंचन
होगा सार्थक तब यह जीवन।।''

इस खंडकाव्य में कवि की सांस्कृतिक चेतना के साथ सामाजिक एवं राजनैतिक चेतना भी दृष्टिगत होती है। कवि भरत के द्वारा परिषद् का गठन कराकर राजतंत्र के बीच प्रजातंत्र का संकेत दिया है। इन्होंने दर्शाया है कि भरत के द्वारा ही प्रजातंत्र की नींव रखी गई– ''राजतंत्र बना रहा पर, रूप था जनतंत्र जैसा/ अवध में ही जन्मा प्रथम ही पंचजन का तंत्र ऐसा।'' खंड काव्य में एक शूद्र की कथा का समावेश भी कराया गया है। वह अपने बेटे का प्रवेश शाला में कराने हेतु माण्डवी से मिलती है। माण्डवी ने परिषद् से उसके बेटे के प्रवेश हेतु अनुमोदन किया और उसके प्रवेश के साथ ही दलितों के लिए शिक्षा के आयाम खुल गए। सामाजिक चेतना का उदाहरण देखिए–

''मानव के शाश्वत मूल्यों का
अपमान मुझे स्वीकार नहीं
दलितों को हेय समझना भी
मुझको तो अंगीकार नहीं।।''

वर्तमान बाजारवाद के दौर में स्वनिर्मित वस्तुओं की ओर रचना हमारा ध्यान आकृष्ट कराती है। माण्डवी सूत कातने का कार्य करती थी और सूत कातकर नंदिग्राम प्रेषित करती थी। अवकाश के क्षणों में भरत उससे वस्त्र बनाया करते थे और पति पत्नी उसी वस्त्र का प्रयोग करते थे। सत्य–अहिंसा और सूत का प्रयोग कवि पर गांधी जी के प्रभाव को परिलक्षित करता है। सूत के प्रसंग का एक उदाहरण देखिए–

''नित चरखे का संचालन कर
कातती सूत वह अति सुन्दर
सब सूत पिण्ड कर एकत्रित
करती थी नंदिग्राम प्रेषित
अवकाश क्षणों में हो श्रम रत
निज कर से बुनते वसन भरत
दोनों पति पत्नी वही वसन
धारण करते थे स्थिर मन।''

तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में भी इसके संकेत मिलते हैं। राम के अवध वापस आने पर सुग्रीव और उनकी सेना के प्रमुख जन राम के साथ पुष्पक विमान से अयोध्या आए थे। उनका सत्कार भरत ने हाथ से बने वस्त्रों से किया था–

''तब प्रभु भूषन बसन मँगाए। नाना रंग अनूप सुहाए।।
सुग्रीवहिं प्रथमहिं पहिराए। वसन भरत निज हाथ बनाए।।''

शिल्प की दृष्टि से भी खंडकाव्य महत्त्वपूर्ण है। भाषा पर कवि का अधिकार है। भावों के अनुरूप भाषा निर्मित करने का कवि का चातुर्य परिलक्षित हुआ है। शब्द भावों की गतिशीलता को बनाए रखते हैं। भाव, भाषा के रथ पर सहजता से अग्रसारित हुई है। खंडकाव्य में उपमा और मानवीकरण का सुन्दर प्रयोग हुआ है। प्राकृतिक उपादानों के सहारे कवि ने सुन्दर बिम्बों की सृष्टि की है। प्रकृति सहचरी के समान कथा के साथ–साथ चलती रहती है। नाट्यकला और पटकथा लेखन से जुड़े होने के कारण संवाद–योजना का अच्छा पुट दृष्टिगत हुआ है। कवि की कल्पनाओं में सुबह का बिम्ब देखिए–

''ठीक ऐसे ही बिछा था
सप्त ऋषियों का खटोला
उषा ने चढ़ बारजों पर
मध्य निसि का द्वार खोला।''

निष्कर्षतः 'माण्डवी' खंडकाव्य के माध्यम से नारी के भारतीय आदर्श को स्थापित किया गया है। माण्डवी के विषय में जो कथा–सूत्र प्राप्त हुए हैं, वे सूक्ष्म होने के कारण कवि की कल्पनाओं का हिस्सा अधिक है। एक तरफ जहाँ इन्होंने रामकथा के पात्र माण्डवी की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित कराया है, वहीं दूसरी तरफ भारतीय सांस्कृतिक परम्परा से नारी मूल्य को दर्शाते हुए वर्तमान में उसकी उपयोगिता की ओर प्रकाश भी डाला है। माण्डवी का व्यक्तित्व एक स्वाभिमानी व्यक्तित्व है। भरत के राम की तरह जीवन बिताने के निर्णय का सहयोग करते हुए स्वयं को एक तपस्विनी के रूप में स्थापित किया है। माण्डवी का धैर्य पूरे खंडकाव्य में कहीं भी टूटते नहीं दिखता है। राम के वन से वापस आने के बाद भी वह तब मिलने जाती है, जब भरत आकर उससे मिलते हैं और उनकी आज्ञा लेती है। खंडकाव्य में दलित चेतना, सबके लिए शिक्षा के साथ समान शिक्षा व्यवस्था, शासन–तंत्र में महिलाओं की भागीदारी, स्वनिर्मित वस्तुओं का उपयोग आदि विन्दुओं की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। इस कथा को संपोषित करने के लिए भाषा–शैली और छंदों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। भारतीय संस्कृति के वट वृक्ष के नीचे सुखमय जीवन का आधार निर्मित किया जा सकता है। माण्डवी खंडकाव्य उस दिशा में मील का पत्थर है और आनेवाले समय में भी इसकी महत्ता सदैव बनी रहेगी।

समीक्षा

उम्मीद की तरह लौटना तुम

श्री शैलेन्द्र शरण
79, रेलवे कॉलोनी, इंदिरा पार्क के पास,
आनंद नगर, खण्डवा (म.प्र.)
मोबाइल–8989423676

मानवीय संवेदनाओं, रिश्तों, पीड़ा और पुनर्जीवन की आकांक्षा का दस्तावेज :

पंकज सुबीर का कविता संग्रह 'उम्मीद की तरह लौटना तुम' एक ऐसे समय में आया है, जब साहित्य और विशेषकर कविता से समाज की अपेक्षाएँ लगातार बढ़ी हैं। उपभोक्तावादी संस्कृति, तकनीकी शोर और राजनीतिक–सामाजिक जटिलताओं के बीच कविता अपने लिए न केवल एक स्थान तलाश रही है, बल्कि मनुष्य के भीतर छिपी संवेदनाओं को जगाने का कार्य भी कर रही है। पंकज सुबीर का यह संग्रह इन्हीं मानवीय संवेदनाओं, रिश्तों, पीड़ा और पुनर्जीवन की आकांक्षा का दस्तावेज है।

'उम्मीद की तरह लौटना तुम'– यह शीर्षक भावनात्मक आग्रह नहीं है, बल्कि जीवनदृष्टि का उद्घोष है। यहाँ उम्मीद का प्रतीक बहुआयामी है। यह संग्रह विछोह और संघर्ष के बाद पुनः उठ खड़े होने और भविष्य के प्रति आस्था का एक आयाम है।

पंकज सुबीर की आत्मीय भाषा, व्यक्तिगत संघर्ष के बावजूद लोक संवेदना से संपन्न है। वे कठिन शब्दावली या जटिल बिम्बों में कविता को उलझाते नहीं, बल्कि सहज–सरल भावों के माध्यम से पाठकों के हृदय तक पहुँचते हैं। शैली संवादात्मक है, जिसमें बातचीत करते हुए वे सभी को अपने साथ समेट लेते हैं। उनकी कविताओं में गद्य–कविता का आभास वर्तमान आधुनिक हिंदी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है।

इस संग्रह में कई स्तरों पर विषयों का विस्तार स्पष्ट होता है। आत्मीय रिश्ते और प्रेम को वे निजी अनुभव के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय अस्तित्व के सार के रूप में देखते हैं। प्रेम के बिना जीवन अधूरा है और उसकी वापसी ही 'उम्मीद की तरह लौटना' है। कविताओं में समकालीन समाज की विडंबनाएँ, अन्याय और विषमताएँ भी उपस्थित हैं; लेकिन कवि केवल निराशा व्यक्त नहीं करता, वह समाधान की दिशा में उम्मीद जगाता है।

प्रकृति के माध्यम से जीवन और संवेदना की गहराई को पकड़ना उनके साथ आत्मसात होना इस किताब की बहुधा कविताओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रकृति कविताओं में प्रतीकात्मक ही नहीं, बल्कि आत्मीय साथी की तरह आती है। इन कविताओं में समय–समय पर पंकज सुबीर आत्म से संवाद करते है, जो पिता की अचानक अनुपस्थिति से उपजे प्रश्नों के उत्तर पा लेने की गहन आकांक्षा है। यह संवाद जीवन के मूल प्रश्नों जैसे– मृत्यु, अस्तित्व, समय, स्मृति तथा भविष्य के लिए चिंतन की ओर ले जाता है।

पंकज सुबीर की कविताओं में एक प्रमुख गुण उनकी संवेदनात्मक गहराई है। वे मामूली–सी घटना या भाव को इस तरह प्रस्तुत करते हैं कि वह बड़े जीवन–दर्शन में बदल जाता है। उदाहरण के लिए, बिछोह की पीड़ा को वे केवल आँसू और दर्द तक सीमित नहीं रखते, बल्कि उसे पुनः मिलन और लौटने की आशा में ढाल देते हैं। उनका भाव–संसार एक तरलता लिए हुए है, जहाँ व्यक्तिगत दुख भी उनकी कविताओं में आकर सामूहिक अनुभव बन जाता है।

इस संग्रह में संबंधों की गरिमा और उनकी संवेदनाओं को विशेष स्थान मिला है, लेकिन यह संवाद केवल व्यक्तिगत नहीं, बल्कि पूरे समाज में रिश्तों की उपस्थिति और उसकी भूमिका का भी सम्मान करता है। कवि इस रिश्ते को 'उम्मीद' के रूप में देखता है तथा जीवन में उजास और कोमलता लानेवाली शक्ति के रूप में भी।

पंकज सुबीर की कविताएँ अपेक्षाकृत छोटी और गहन हैं। कहीं–कहीं उनमें सूक्तियों–जैसी संक्षिप्तता है, तो कहीं गद्यात्मक विस्तार। यह विविधता संग्रह को एकरूपता से मुक्त कर देती है और पाठक को ताजगी का अनुभव कराती है। कविताओं का विचार और भाव का प्रवाह बाँधे रखता है।

आज के समय में जब समाज हिंसा, अविश्वास और विघटन की ओर बढ़ रहा है, तब कविता का दायित्व है कि वह मनुष्य में मनुष्यता को बचाये रखे। पंकज सुबीर की कविताएँ यही करती हैं। वे बार–बार कहती हैं कि निराशा की कोई अंतिम मंजिल नहीं है, बल्कि आशा ही जीवन का स्थायी सत्य है। यही कारण है कि उनका काव्य स्वर समकालीन परिदृश्य में सार्थक और प्रासंगिक है।

संग्रह पढ़ते हुए हम एक आत्मीय यात्रा पर निकल जाते हैं। अपने खोये हुए रिश्तों को याद करते हैं, कभी वर्तमान समाज की जटिलताओं से रू–ब–रू होते हैं, अंततः एक उजाले की ओर लौटते हैं। संग्रह की यह एक बड़ी उपलब्धि है कि वह भीतर तक छू लेता है और विचार मंथन के लिए प्रेरित करता है।

'उम्मीद की तरह लौटना तुम' केवल कविताओं का संग्रह नहीं, बल्कि एक मानसिक–आध्यात्मिक यात्रा है। यह जीवन के अंधकार में एक मद्धिम लौ में जलते दीपक की तरह है, जो आश्वस्त करता है कि चाहे कितनी ही कठिन घड़ियाँ आएँ, मनुष्य अंततः उम्मीद और प्रेम की ओर लौटेगा। पंकज सुबीर की कविताएँ पाठक के भीतर छिपी आर्द्रता को जाग्रत करती हैं और एक बेहतर मनुष्य बनने का आह्वान करती हैं।

पंकज सुबीर का यह संग्रह हिंदी कविता की परंपरा में उम्मीद, प्रेम और मानवीय संवेदना के स्वर को और प्रखर करता है। यह संग्रह आग्रह करता है प्रत्येक कठिनाई, हर विफलता और सर्वथा अंधेरे के बाद 'उम्मीद की तरह हमें लौटना' ही होगा। यह संग्रह इसलिए भी सार्थक है, कि यह कविता सिर्फ सौंदर्य नहीं, बल्कि जीवन का साहस और दिशा पाने के लिए भी प्रेरित करता है। (शिवना प्रकाशन, सिहोर, म.प्र.)

समीक्षा :

समाधान की राह दिखाती लघुकथाएँ

अरविंद अवस्थी
श्रीधर पांडेय सदन बेलखोरिया का पुरा
मीरजापुर, मो 9161686444

वरिष्ठ साहित्यकार केदारनाथ सविता किसी पहचान के मोहताज नहीं हैं। उनका काव्य संग्रह 'हथौड़ियों की चोट' पाठकों में लोकप्रियता पा चुका है। इसके अतिरिक्त श्री सविता 'नंददीप' पत्रिका का संपादन करते हुए भी साहित्य एवं समाज में अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं।

धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, सरिता, नवनीत जैसी तमाम पत्रिकाओं में उनकी क्षणिकाएँ और लघुकथाएँ छप रही थीं। केदारनाथ सविता बैंक में काम करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होते रहे, तमाम पारिवारिक समस्याओं से भी दो–दो हाथ करते रहे, किंतु अपनी रचनाशीलता को कहीं से भी कमजोर नहीं होने दिया। उनकी जिजीविषा और साहित्य–पिपासा दिनोंदिन बढ़ती रही। फलस्वरूप उनकी लघुकथाओं का एक गुलदस्ता हमारे सामने है।

हिंदी श्री पब्लिकेशन, भदोही, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित उनकी लघुकथाओं और कहानियों का एक संग्रह 'पहला वेतन' सामाजिक विसंगतियों, क्रूरताओं, गलत परंपराओं और विश्वास घातों की पड़ताल करता है।

विद्वानों के अनुसार आधुनिक लघुकथा की विकास यात्रा उन्नीसवीं शताब्दी से प्रारंभ हुई है, जबकि लघुकथा साहित्य लेखन की पुरानी विधाओं में एक रही है। विश्व के तमाम पुराने समुदायों में किंवदन्तियों, लोककथाओं, पौराणिक आख्यानों, परियों की कहानियों आदि के रूप में विद्यमान रही है। लघुकथा का विकास दृष्टांतों के रूप में हुआ। छोटी कहानी, मिनी कहानी तथा लघुकहानी आदि नामों के बाद 'लघुकथा' नाम रूढ़ और प्रचलित हो गया। साहित्य को गणित की तरह नहीं समझा जा सकता; क्योंकि गणित में परिभाषाएँ और सूत्र स्थायी होते हैं, जबकि साहित्य में समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। साहित्य की कोई भी विधा इससे अछूती नहीं है।

बुद्धिनाथ झा 'कैरव' ने अपनी पुस्तक 'साहित्य साधना की पृष्ठभूमि' में 'लघुकथा' शब्द का प्रयोग करते हुए उसकी परिभाषा दी–''संभवत: 'लघुकथा' शब्द अंग्रेजी के 'शार्ट स्टोरी' शब्द का हिंदी अनुवाद है। लघुकथा और कहानी में कोई तात्विक अंतर नहीं है। यह लंबी कहानी का संक्षिप्त रूप भी नहीं है। लघुकथा का विकास दृष्टांतों के रूप में हुआ। ऐसे दृष्टांत नैतिक और धार्मिक क्षेत्रों से प्राप्त हुए। इसकी कहानियाँ, पंचतंत्र की कथाएँ तथा जातक आदि कथाएँ इसी के रूप में हैं।'' हालाँकि लघुकथा की परिभाषा गढ़ने का अनेक विद्वानों ने प्रयास किया है, किंतु आधुनिक लघुकथा के संबंध में पृथ्वीराज अरोड़ा की परिभाषा अधिक समीचीन एवं प्रासंगिक लगती है–''प्रामाणिक अनुभूतियों पर आधारित किसी एक क्षण की सुगठित आकार के माध्यम से लिपिबद्ध किया गया प्रारूप लघुकथा है।'' इसके अतिरिक्त डॉ. माहेश्वर, दिनेशचंद दुबे, रामलषन सिंह, वेद हिमांशु तथा डॉ. सतीशराज पुष्करणा आदि ने लघुकथा के संबंध में खूब काम किया है।

अब तक के शोधों के अनुसार यह कहा जा सकता है कि 1874 ई0 में बिहार के सर्वप्रथम हिंदी साप्ताहिक पत्र 'बिहार–बंधु' में कुछ उपदेशात्मक लघुकथाओं का प्रकाशन हुआ था, जिनके लेखक बिहार के प्रथम हिंदी पत्रकार मुंशी हसन अली थे। 1875 भारतेंदु हरिश्चंद का लघुकथा संग्रह 'परिहासिनी' प्रकाश में आया। लघुकथा के क्षेत्र में समीक्षात्मक और आलोचनात्मक कार्य को आगे बढ़ाने में मधुदीप, डॉ. सतीशराज पुष्करणा, रामेश्वर काम्बोज हिमांशु, डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्र, बलराम अग्रवाल, सतीश दुबे, जगदीश कश्यप, कमलचोपड़ा तथा स्वर्गकिरण आदि के नाम लिये जा सकते हैं। लघुकथा–जगत् में नई पीढ़ी के गणेशजी बागी, संध्या तिवारी, कल्पना भट्ट, अंजू दुआ जैमिनी, अशोक दर्द, आकांक्षा यादव, उमेश महादोषी, उषा अग्रवाल 'पारस', ज्योत्स्ना कपिल, नीलिमा शर्मा, महावीर खाँल्टा, कुँवर प्रेमिल, कृष्ण कुमार यादव, स्वाति तिवारी आदि अनेक नाम हैं।

केदारनाथ सविता की लघुकथाएँ एकीकृत प्रभाव के साथ स्वर या भावना उत्पन्न करती हैं। इनकी कथाएँ कथानक, चरित्र, संघर्ष और विषय के बुनियादी घटकों की कसौटी पर खरी उतरती हैं। संग्रह 'पहला वेतन' की पहली लघुकथा है 'पहला वेतन'। यह लघुकथा समाज के उन बूढ़े पिताओं की आँखों का टूटता सपना है, जिनकी औलादें उनके एहसानों को भूलकर उनकी उपेक्षा करने लगती हैं। अरे, बूढ़े पिता ने यही तो चाहा था कि उसका बेटा जब पहला वेतन पाए, तो उसके हाथ पर रख दे और वह उसमें से दस रुपये लेकर बाकी बेटे को लोटा देगा। दुनिया का कोई बाप अपनी औलाद का बुरा नहीं चाहता। उसकी इच्छा पूरी करने के लिए वह कठिन परिश्रम करता है। कभी छुट्टी नहीं लेता, बल्कि ओवरटाइम करता है। उसे बेटे की कमाई नहीं चाहिए। वह तो बस इतना चाहता है कि उसके बेटे उसे बाप समझते रहें। पिता का सम्मान देते रहें। उसे कोई अवसर दें कि वह अपने बेटों पर गर्व कर सके। यह महसूस कर सके कि घर में उसका भी वजूद है। यह लघुकथा मध्यमवर्गीय परिवारों के विघटन की करुण गाथा है। भौतिकता की चकाचौंध और बेहद बढ़ती महँगाई के बीच दौड़ता–भागता बेटा अपने पिता के अस्तित्व को पहचानने से इनकार कर देता है। अब वह अपने माता–पिता के प्यार की परिधि से छलांग लगाकर बाहर निकल जाता है।

'हल्के आभूषण' में समाज के दोहरे चरित्र का बड़ी संजीदगी से चित्रण किया गया है। सास–बहु के आपसी मनमुटाव, एक–दूसरे को कमतर साबित करने की जद्दोजहद, अपने–अपने मायके का गुणगान तथा दिन–रात की तू–तू मैं–मैं से शायद ही कोई घर बचा हो। इसीलिए जब विवाह होते ही बेटा अपनी पत्नी को भी साथ लेकर बाहर चला जाता है या बहू साफ शब्दों में कह देती है कि उसे सास–ससुर के साथ नहीं रहना है और बेटा विवश होकर पत्नी को लेकर चला जाता है। बहू यदि नौकरी वाली हुई तो कहना ही क्या! किसी एक पक्ष को दोषी मानना न्यायसंगत नहीं होगा। कहीं सास अच्छी, तो कहीं बहू अच्छी या इसके विपरीत कहीं दोनों खराब। यह कहानी समाज को नई राह दिखाना चाहती है।

विजय ऐसा इंसान है, जिसकी बेटी को ससुराल में प्रताड़ित किया जाता है, जबकि यह खूब पढ़ी–लिखी और नौकरीशुदा है। विजय नेक इंसान हैं, इसलिए अपने बेटे की शादी में दहेज की माँग बिल्कुल नहीं करते। अपनी सामर्थ्य भर गहने भी ले गए। चार पुत्रियों के पिता की पीड़ा को उन्होंने खूब समझा, किंतु उन बेटियों ने उनका अपमान यह कहकर किया कि आभूषण इतने हल्के हैं कि फूँकने से उड़ जाएँगे। विजय यह अपमान सह नहीं पाते और हृदयाघात से उनकी मृत्यु हो गई। 'धोखा' लघुकथा समाज को धोखे में रखनेवाले ऐसे पढ़े–लिखे लोगों की कलई खोलती है, जो दिखावा तो बहुत करते हैं, किंतु उनका चरित्र बहुत खोखला रहता है। 'दवा' कहानी ऐसे चिकित्सकों की पोल खोलती है, जो मरीजों के साथ धोखाधड़ी करते हैं। उनके मर्ज को ठीक करने की बजाय उसे बढ़ाते हैं या अधिक दिनों तक खींचते हैं, जिससे उनसे अधिक पैसे वसूल सकें। 'शालू', 'सॉवली', 'लापता', 'रोग', 'साथी', 'लेबर', 'ट्रेन में नशा', 'फटे जूते', 'अपाहिज','नकारात्मक ऊर्जा', 'गाँव में चुनाव', 'बड़ों की सीख' आदि अनेक लघुकथाएँ समाज को दर्पण दिखा रही हैं। सविता जी की कहानियाँ परिपक्व रचना–सूत्रों से पिरोई गई हैं। इनका ताना–बाना बहुत सार्थक और सशक्त है। सरल और सहज भाषा के कारण में पाठकों के मन में आसानी से प्रवेश कर अपनी जगह बनाती हैं। मेरी शुभकामना है कि आपका अगला संग्रह शीघ्र आए।

समीक्षा

घिस रहा है धान का कटोरा
ग्रामीण संस्कृति की महक की कविताएँ

डॉ. नीलोत्पल रमेश
गिद्दी–ए, जिला–हजारीबाग
झारखण्ड–829108
मो. नम्बर–9931117537

'घिस रहा है धान का कटोरा' लक्ष्मीकांत मुकुल का दूसरा कविता संग्रह है, जिसमें 75 कविताएँ संकलित हैं। इसके पूर्व भी एक कविता–संग्रह 'लाल चोंचवाले पंछी' प्रकाशित हो चुका है। इनकी कविताएँ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रशंसित होती रही हैं। लक्ष्मीकांत मुकुल की कविताओं में आंचलिक शब्दों के प्रयोग, कविता को अपनी जमीन से जोड़ने में सार्थक बन पड़े हैं। कवि किसानी संस्कृति में पूरी तरह रचा–बसा है। यही कारण है कि इनकी कविताओं में ग्रामीण–संस्कृति की महक बरकरार है। गाँव की खूबसूरती और गाँव की बदलती हवा का कवि ने बखूबी चित्रण किया है – अपनी कविताओं में।

लक्ष्मीकांत मुकुल की कविताओं के बारे में ओम प्रकाश मिश्र ने लिखा है कि ''संग्रह की कविताओं से गुजरते हुए ऐसा लगता है, मानो हम एक विशेष इलाके में पैदल जा रहे हों और रास्ते में अनेक छोटी–बड़ी बस्तियाँ, कहीं हरे–भरे खेत–खलिहान, कहीं खेतों में सूखते–मुरझाते पौधे, कहीं वृक्षों की लंबी कतारें, तो कहीं वीरान बंजर भूमि, रंग बदलती हुई ऋतुएँ और इन्हीं के बीच जीवन के साथ संघर्ष करते और उत्सव मनाते हाड़–मांस के पुतले दिखाई पड़ रहे हों।''

'घिस रहा है धान का कटोरा' शीर्षक कविता से ही मैं अपनी बात प्रारंभ करना चाहूँगा। शाहाबाद को 'धान का कटोरा' कहा जाता है। वर्तमान में शाहाबाद को चार जिलों में विभाजित किया जा चुका है। वे जिले हैं– भोजपुर, रोहतास, बक्सर और कैमूर। धान की अच्छी पैदावार होती थी इन जिलों में, लेकिन वर्तमान समय में अच्छी पैदावार नहीं मिल रही है। इसके कई कारण हैं– सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक और उर्वरकों का प्रयोग। यही कारण है कि इन क्षेत्रों के लोगों की जीविका का जो साधन खेती–किसानी था, वह अब क्षीण होता जा रहा है। इसी को कवि ने 'घिसना' कहा है। यानी जिस चीज के लिए क्षेत्र जाना जाता था, वह अब नहीं रहा। कवि ने लिखा है–

''बदलते धान की खेती में
प्रकृति ने बदल दिया अपना रूप–रंग
गुण–धर्म रासायनिक खादों की बढ़ती
उपयोगिता ने स्याही सोख्ता की तरह
निचोड़ ली मिट्टी की उर्वरता
कीटनाशक दवाओं के छिड़काव से
नष्ट होते जा रहे हैं प्रतिरोधक मित्र कीट।''

छोटी लाइन की छुक–छुक गाड़ी कविता के माध्यम से कवि ने अपने बचपन के दिनों को याद करने की कोशिश की है। छोटी लाइन पर जो गाड़ी चलती थी, वह आरा से सासाराम तक। इस बीच में पड़नेवाले छोटे–छोटे स्टेशनों पर रुकती हुई वह गाड़ी आती–जाती थी; लेकिन इस क्षेत्र के लोगों की जीवन–रेखा थी यह गाड़ी। कहीं आना–जाना हो, तो लोग इसी से आते–जाते थे। पर आज बड़ी लाइन भी बिछ चुकी है, जिस पर सुपरफास्ट ट्रेनें चल रही हैं, पर वह जीवन–राग नहीं है, जो छोटी लाइन के समय में था। लोक गायक दुर्गेन्द्र अंकारी के गीत छोटी लाइन पर चलनेवाली ट्रेनों में खूब प्रचलित थे। कवि ने लिखा है–

''नई बिछी बड़ी लाइन की पटरियों पर
दौड़ रही है सुपरफास्ट ट्रेन
सड़कों पर सरक रहीं हैं तेज चाल की सवारियाँ
गाँवों से शहरों तक की भागम–भाग
अंधी थकन में भी अचानक मिल जाता है
बरसों का बिछड़ा कोई परिचित
भोला–भाला, सीधा–साधा
दुनियादारी के उलझनों से दूर
सहसा याद आता है
छोटी लाइन की छुक–छुक गाड़ी वाले दिन
ममहर के रास्ते में फिर जाते हुए।''

'कुलधरा के बीच मेरा घर' कविता के माध्यम से कवि ने उजड़ते गाँव का दृश्यमान चित्र उभार कर रख दिया है। गाँव उजड़ते जा रहे हैं और शहर आबाद होते जा रहे हैं। कवि को याद है, जब भरा–पूरा गाँव था तो एक रागात्मक संगीत की मधुर ध्वनि कानों में सुनाई पड़ती थी। रसोई का पकना, उसकी खुशबू से एक तरह का प्रेम ही झलकता था, पर अब वो नहीं रहा। ऐसी स्थिति में कवि का एकमात्र घर जो रह गया है कुलधरा में। कवि ने लिखा है–

''कुलधरा की तरह, शाप के भय से नहीं,
कुछ पेशे बस, कुछ शौक से छोड़ दिए घर–गाँव
खो गए दूर–सुदूर शहरों की कंक्रीटों के जंगल में
छूटे घर, गोशाले मिलते गए मिट्टी के ढेर में
पुरखों की संचित खेतों की आय से
बनती गई उनकी शहरी संरचनाएँ
उन वंशवृक्षों की टहनियाँ, फूल, पत्ते
लहराते गए महानगरों के सीमांतों में।''

'इतिहास का गढ़' कविता के माध्यम से कवि ने 'मैरवा का गढ़' के बारे में जानने–समझने की कोशिश की है। 'मैरवा का गढ़' आज अवशेष के रूप में विद्यमान है; लेकिन यह गढ़ कभी आबाद रहा होगा। आबाद रहने के पहले इसे बनाने में कई मजदूरों ने अपना श्रम दिया होगा। आज लोगों को उससे कई तरह की आवाजें सुनाई पड़ती हैं, जो दहशत कायम करने में सफल होती हैं। लोगों का मानना है कि जन्म के साथ से ही यह गढ़ इसी रूप में विद्यमान है। पूर्वजों ने भी ऐसा ही कहा था। कवि ने लिखा है–

''कितने अचरज की खान है यह गढ़
इस बस्ती के लिए सबसे बड़ा अचरज
कि हर के होश सँभालने से पूर्व से ही
हर किसी के अंदर
कछुए–सा दुबका बैठा है यह गढ़।''

'बारहमासा' कविता के माध्यम से कवि ने अपनी प्रिया को हमेशा साथ बने रहने की कामना की है। कवि जब खेतों में काम करे, तो अपनी प्रिया को चाहता है कि वह कलेवा लेकर साथ रहे। कवि जब खेतों पर काम करते हुए रहे, तो उसकी प्रिया रोपनी का गीत गावे। यानी कवि अपनी प्रिया के साथ मात्र से ही सब कुछ करते जाना चाहता है। ठंड में प्रिया द्वारा अंगीठी सुलगाना भी उसे अच्छा लगता है। कवि ने लिखा है–

''सावन भादो की रिमझिम फुहारों के बीच
कुदाल लेकर जाऊँगा खेत पर

तुम आओगी कलेवा के साथ
चमकती बिजली, गरजते बादलों के बीच
तुम गाओगी रोपनी के अविरल गीत
बिचड़े डालते मोर सरीखे थिरकेगा मन।''

'देखना फिर से शुरू किया दुनिया को' कविता के माध्यम से कवि ने प्रेम की अभिव्यक्ति की है। कवि को अपनी प्रिया की हरेक चीज पसंद है। कवि से जो कुछ कहा उनकी प्रिया ने, वह उसे पसंद आ गई। यानी प्रिया की हरेक गतिविधि पर प्रेमी की नजर है। यानी कवि का कहना है कि जब–जब तुमने कुछ कहा, तब–तब हमने दुनिया को फिर से देखने की कोशिश की और पाया कि दुनिया और खूबसूरत हो गई है। कवि ने लिखा है–

''प्रश्नोत्तर में खिलखिलाहट
खिलखिलाहट से भर जाती है प्रतिध्वनियाँ
यही ध्वनि उठी थी मेरे अंतर्मन में
जब तुमने मेरे बिखरे बालों को उंगलियों से की थी कंधी
देखना फिर से शुरू किया मैंने इस दुनिया को
कि यह है कितनी हस्बेमामूल, कितनी मुकद्दस।''

'हरेक रंगों में दिखती हो तुम' कविता के माध्यम से कवि ने अपने प्रेम का इजहार किया है। कवि प्रेम में डूबा हुआ है, यही कारण है कि उसे उसकी प्रिया हरेक रंगों में दिखाई पड़ने लगती है। कवि के सोच के साथ–साथ प्रिया का रंग–रूप परिवर्तित होते जाता है। इतना लगाव है उसे अपनी प्रिया से कि वह उससे बिल्कुल अलग नहीं रह सकता। कवि ने लिखा है–

''चूल्हे की राख–सा नीला पड़ गया है
मेरे मन का आकाश
तभी तुम झूम आती हो
जलकुभी के नीले फूलों जैसी खिली–खिली
तुम्हें देखकर पिघलने लगते हैं
दुनिया की कठोरता से सिकुड़े
मेरे सपनों के हिमखंड।''

'विस्तृत हैं पिता' और 'पिता की सीख' कविताओं के माध्यम से कवि ने पिता की विराटता का वर्णन किया है। पिता मूक रहकर भी बहुत कुछ कह जाते हैं, कर जाते हैं। वे ऐसे वट वृक्ष हैं, जिसकी सघनता उनकी संतान को बहुत कुछ प्रदान कर जाती है जीवन में आगे बढ़ने के लिए। कवि ने लिखा है–

''समुद्र की तरह अथाह हैं पिता
पैसे नाव पर तैरता कोई यात्री
जोह लेता है दुनिया के अद्‌भुत रहस्य
वैसे ही उनके कंधों पर चढ़कर
हम घूमते, परिचित होते थे अनदेखी गलियाँ
सड़कों और मेले के सँकरे मार्ग।''

'यह कैसा समय है' कविता के माध्यम से कवि ने देश की वर्तमान स्थिति का जिक्र किया है। कवि का कहना है कि देश में माकूल परिस्थितियाँ नहीं हैं, जिससे कोई व्यक्ति चैन से जीवन बसर कर सके। चारों तरफ अराजकता कायम है। कहीं से भी कुछ की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। कॉलेजों में गुंडों द्वारा शिक्षकों को पीटा जाना अपने समय की सबसे भयानक स्थिति है। जब गुरु ही पीटे जाने लगेंगे, तो शिक्षा क्या बचेगा? यानी शिक्षा मटियामेट होने के कगार पर खड़ा है। कवि ने लिखा है–

''यह कैसा समय है
कि गुंडे कॉलेजों में पीट रहे हैं
शिक्षकों को घसीटकर
मारा जा रहा है एकांत लाइब्रेरी में
पढ़ रहे छात्रों को
बदला जा रहा है हमारे देश काल का इतिहास
कच्ची दिमागों में भरा जा रहा है
शैतानी हरकतें
अपने ही देश के नागरिकों से माँगा जा रहा है नागरिकता का प्रमाण।''

'घिस रहा है धान का कटोरा' की कविताएँ पाठकों को बाँधे रखने में पूरी तरह से सफल हुई हैं। इसमें कवि लक्ष्मीकांत मुकुल के देशी ठाठ–बाट को आसानी से जाना–पहचाना जा सकता है। कवि की किसानीयत पूरी कविता में महसूस की जा सकती है। आंचलिकता के तौर पर लक्ष्मीकांत मुकुल ने भोजपुरी के शब्दों का बेधड़क प्रयोग किया है। ये प्रयोग कहीं खटकते नहीं हैं, बल्कि कविता में सरसता भर जाते हैं। संग्रह की कविताओं को एक बार पढ़ना शुरू करने के बाद, बिना पूरी पढ़े छोड़ने का मन नहीं करेगा। कवि लक्ष्मीकांत मुकुल जी को हार्दिक शुभकामनाएं।

घिस रहा है धान का कटोरा कविता–संग्रह
कवि लक्ष्मीकांत मुकुल, प्रकाशक सृजनलोक प्रकाशन, नई दिल्ली–110062, मूल्य 299, पृष्ठ 168, वर्ष 2022 ई.

हरसिंगार
हरसिंगार की खुशबू
रातों की महकाती
निगाहें ढूँढ़ती फूलों को
जी रात भर खुशबू
बाँटते रहे बन दानकर्ता
गिरे फूल बिछ बन जाते कालीन
कहीं पाँवों में छाले ना पड़ जाए
मेरे महबूब के
मौसम के घरों में
कुछ समय रहेंगे मासूम फूल
और दिन में बेघर हो जाएँगे

मासूम हरसिंगार
खुशबू का उपहार लाए
मोहब्बत करनेवालों के लिए
अनजान भौंरे भी सो गए
दिन के उजालों में वे
खुशबुओं का पता पूछ रहे
डाली–डाली पत्तों से

संजय वर्मा 'दृष्टि',
मनावर, जिला धार
मो.–9893070756

भ्रमर भ्रम में पड़े
सोचते, क्या मोहब्बत रातों को भी
पहरा देती।

समीक्षा

जाना है समय के पार : गीत संग्रह

उषा पाण्डेय 'कनक'
कंदवा, वाराणसी,
मो. 9102883667

''अवरोधक हो जो प्रगति पथ का
वह वाद हमें स्वीकार नहीं
सौहार्द प्रेम के पौधे पर
उन्माद हमें स्वीकार नहीं
काँटों को फसल लिख दे ऐसा
अनुवाद हमें स्वीकार नहीं।''

कवि या गीतकार की रचना उसके व्यक्तित्व का आईना होती है और वह अपने समय को अपने साथ लेकर चलता है, इस तरह कवि एक युग को साथ लेकर चल रहा होता है। ऐसे में वह किसी मत या वाद के मार्ग का अनुसरण नहीं करते हुए स्वयं का मार्ग बनाते हुए एक युगद्रष्टा के रूप में समाज के लिए कलम चलाते हैं जो हर युग के लिए प्रासंगिक होते हैं, उपर्युक्त गीतांश में यही भाव स्पष्ट हो रहा है।

गीतकार सूर्यप्रकाश मिश्र जी के गीतों की बात करें, तो आपकी सृजनात्मकता का आधार बृहद होता है, रचनाओं का संसार भी अपरिमित है। वह अपने समय की सूक्ष्मतम घटनाओं को स्वयं में जीते हैं, साथ ही घटना या चरित्र को अपनी पृथक् दृष्टि से रखने का प्रयास करते हैं। कवि या रचनाकार की संवेदना, समाज के प्रति उत्तरदायित्व ही उनकी रचना में दृष्टिगत होता है साथ ही उनका लेखन समाज के हर वर्ग को छूकर निकलता है, जिसमें प्रकृति की कोमलता भी दिखती है साथ ही मानव जीवन की जटिलता बड़े ही सरलता से बहती दिखती है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की पह पंक्ति इसको ही चरितार्थ करती है–''यह सही है कि कवि कल्पना सचेतन हृदय जितना ही विश्वव्यापी होता है, उतनी ही उसकी रचना में गहराई से हमारी परितृप्ति बढ़ती है।''

मैं सूर्य प्रकाश मिश्र जी के गीत संग्रह 'जाना है समय के पार' की बात करें तो जिस प्रकार इनके अन्य गीत संग्रह अलग अलग धरातल पर अपनी मजबूत पकड़ के साथ पाठक के दिलो दिमाग में बिम्ब और प्रतीक के माध्यम से चित्र उपस्थित करते हुए असर डालते हैं, उनसे यह गीत संग्रह इस मामले में अलग है कि इसमें भिन्न–भिन्न विषयों के गीत रखे गए हैं, यह इनका आठवाँ गीत संग्रह है, यह प्रतिष्ठित प्रकाशन लिटिल बर्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित है। इसमें 104 पृष्ठों में 78 गीत संगृहीत है।

किसी भी पुस्तक का शीर्षक पुस्तक का प्रथम परिचय होता है और पाठक के हृदय में पढ़ने की उत्सुकता पैदा करता है। कवर पृष्ठ बहुत ही नायाब है तथा इसमें नैसर्गिक दृश्य बहुत ही खूबसूरती से उकेरा गया है जो इसके शीर्षक को काफी हद तक परिभाषित कर रहा है।

आरम्भ में ही कवि अपनी वसुधैव कुटुंबकम् की भावना में सम्पूर्ण जीव और मानव के हितार्थ समष्टि कामना करते हैं।

''हो जिससे कल्याण विश्व का ईश्वर से ऐसा वर माँगे
पोषण हो पर शोषण न हो सब में यही भावना जागे
जीव और वन दोनों मिलकर बन जाये जीवन के धागे
पशु पंछी के साथी हो लें मिलकर कदम बढ़ाये आगे।''

समाज के प्रमुख अवयव, जिनमें प्रमुख रूप से संस्कृति, सामाजिक समूह, सामाजिक मानदंड, सामाजिक भूमिकाएँ, सामाजिक स्तरीकरण और सामाजिक परिवर्तन में मानव स्वरूप कितना बदल गया इसी वास्तविकता को गीत के माध्यम से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं–

''दो हरे पेड़ सूखते देखे
कह रहे थे कि बेसहारा हूँ
एक का नाम खुशमिजाजी था
एक बोला में भाई चारा हूँ।
शान्ति की सूखती लता बोली
सुरमयी वक्त का इशारा हूँ।''

तनावपूर्ण जीवन–शैली में जिंदगी के लिए बेहद अहम हिस्से को खोता जा रहा तथा एकांत में जीने लगा है, भौतिकता के मृगमरीचिका में वास्तविक सुख भूलता जा रहा, यह विडंबना नहीं तो और क्या है, गीतकार सूर्य प्रकाश मिश्र जी की इस बात से चिंतातुर हैं।

मानवता का गुण ही सर्वोपरि गुण है जिसमें सबके लिए कल्याण भाव उत्सर्जित और पल्लवित होते हैं। मिश्र जी ने अपने गीतों में अनुभव और संवेदना से मिश्रित जीवन की यात्रा को बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से इस तरह सज्जित किये हैं कि वह किसी एक का नहीं, वरन प्रत्येक के हृदय में समान गति एवं भाव में बहनेवाली धारा बनी है जो कहीं दर्द में भींजती है, तो कहीं खुद को आश्वासन देती है।

'गोधूलि', 'घाट की शाम', 'सपनों का स्तूप', 'पीला पत्ता' और 'भार की हवा जैसे गीत हैं–

''वय में गोधूलि उतर आयी
ऐश्वर्य दूसरे लोक चला
बस शेष रह गयी परछाई
खेती की नींव में दिन डाले
कुछ सपने थोड़ी उम्मीदें
न्योछावर कर दी फसलों पर
सुख चैन भरी कितनी नींदें
पर लगा सभी कुछ डूब गया
जब फ़सल काट कर घर आई।''

उम्र के एक पड़ाव पर पहुँच वक्त का विनिमय करते हुए पूरे जीवन का अवलोकन कर इंसान अपना आकलन करता है। मिश्र जी के गीतों की यही खासियत है दिल से लिखते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि यही तो सत्य है। एक वक्त आने पर व्यक्ति यही महसूस करता है। इस गीत में मानव मन के अतृप्त भाव को उकरते हुए कवि कुछ हताश जरूर दिखते हैं।

गीत संग्रह 'जाना है समय के पार' में मिश्र जी ने प्रतीकों और बिम्ब के रूप में पौराणिक चरित्र को लेकर गीतों की रचना की है, जो प्रयोगस्वरूप सफल प्रतीत हो रहा, साथ ही वर्तमान को उस चरित्र से जोड़ते हुए दिख रहे हैं। 'अंगुलिमाल', 'अभिमन्यु', 'अश्वत्थामा', 'विदुर', 'विश्वामित्र उवाच', 'बृहन्नला' और 'शिव'। अंगुलिमाल के चरित्र को सब जानते हैं, मगर वर्तमान में अंगुलिमाल स्वयं की गरिमा और संस्कृति का हनन, छल, द्वेष जैसे सभी विकृतियों में इस प्रकार ढल गया है कि बड़े शान से इसमें ही जी रहा है। कवि को अपने विचार व्यक्त करने की पूरी आजादी होती है। वह किसी घटना को किस रूप में देखता है, यह उसकी स्वतंत्रता है और यही गुण भी है। उसकी संवेदनशीलता तथा घटना देखने के नजरिये एवं उनके विराट क्षेत्र की यहाँ चर्चा कर रही हूँ 'अश्वत्थामा' नाम के शीर्षक गीत की महाभारत समाप्त होने के पश्चात् अश्वत्थामा ने पांडवों के पुत्रों और उत्तरा के गर्भ को

ब्रह्मास्त्र से नुकसान पहुँचाया था। इससे कृष्ण ने उसे बहुत ही कष्टकारी रोग से ग्रस्त हो चिरकाल तक धरती पर भटकने का श्राप दिया और आज भी मान्यता है की वह इसे भोग रहा है। सूर्यप्रकाश मिश्र जी ने इस एक गीत के माध्यम से कृष्ण पर सवाल उठाते हैं, कहते हैं कि छल से गुरु द्रोणाचार्य के मृत्यु के उपरांत क्या पुत्र को क्रोध आना सामान्य नहीं है और उसने अगर बदले की भावना से यह कुकृत्य किया, तो क्या गलत किया इस युद्ध में बहुत से नियम तोड़े गए थे, फिर रण में द्रोणपुत्र को भी पांडवों द्वारा वध करवा दिया होता–

''खण्डित होते सिद्धांतों का
हर कर्ज उतार दिया होता
कह देते कुंती पुत्रों से
उसको भी मार दिया होता।''

आगे बढ़ते हुए मिश्र जी के गीत 'वृहन्नला' को पढ़ते हुए रोमांचित और चमत्कृत हुए बिना पाठक नहीं रह सकता।

''प्रत्यंचा की ध्वनि से कह दो
अनुशासन की सीमा लाँघे
कह दो बाणों से बहुत हुआ
अब उठकर अपना हक माँगे
संदेश भेज दो लिप्सा को
विश्वास तुम्हारा खत्म हुआ।''

मन से हार गए व्यक्ति को उसकी अपनी शक्ति का आभास नहीं होता, वह स्वयं पहचान खोकर बेबस की भाँति जीने लगता है। समय की हार स्वीकार कर अपने सारे विवेकरूपी आयुध को अपने ऊपर लादे हुए अकर्मण्यता के लिबास के बोझ तले जीता है।

यह एक व्यक्ति ही नहीं, पूरा समाज, पूरा एक देश भी हो सकता है। ऐसे में जरूरत होती है एक आह्वान की, जो उसे उसके शक्ति की पहचान करा सके, उसके अस्तित्व का बोध करा सके। गीत सांकेतिक रूप में यह भी प्रकट करता है कि मनुष्य विपरीत परिस्थिति में भी किस प्रकार अपने पक्ष में समय होने तक धीरज और संयम धारण कर उसे गुजर जाने जैसा दुष्कर वक्त जीने को बाध्य हो जाता है; क्योंकि उसे यह भलीभाँति ज्ञात है कि पुरुषार्थ के समय ही उसकी बुद्धि और शक्ति का प्रयोग सार्थक होगा। इसी संदर्भ में कवि कहते हैं –

''दिन आये शौर्य प्रदर्शन के
परिहास तुम्हारा खत्म हुआ
इस पल से ही है शूरवीर
संत्रास तुम्हारा खत्म हुआ।''

'आओ नदी', 'उत्तरार्ध', 'उत्तरों के चेहरे', 'चील', 'डरा हुआ सच' से होते हुए रचना 'नींव और दीमक' पर आकर रुक जाने को विवश हुए, जो आज की परिस्थिति को बयान करने में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है, वह एकदम माकूल है, कवि ने इतनी गहरी दृष्टि से अपनी चिंता जाहिर की है। जिस धरा पर राम, कृष्ण, सीता, अहिल्या, लक्ष्मीबाई जैसे प्रणेता जन्म लिये, आज उसी भूमि को परिवर्तन की आड़ लेकर भ्रष्ट करने का दीमक लग चुका है–

''कुल दीमक अति प्रसन्न है
कठिन भूमि भुरभुरी हुई है
मुक्त आचरण की परिभाषा
परिवर्तन की धुरी हुई है
उठो देश के पहरेदारो
हवा बहुत खुरदुरी हुई है।''

जिसे व्यक्तिगत विकास कह रहे हैं समाज तथा परिवार में मुक्तव्यवहार की स्वछंदता को बड़े आदर से स्वीकार कर लिया जा रहा उसके दुष्परिणाम हमें समग्र दिख रहे हैं। यह स्वतंत्रता कहीं विपरीत राह न अपना ले, इसके लिए भी कवि सजग होकर सचेत कर रहें हैं। 'पतझड़ हार गया', 'बनारस', 'बेटी का खत', 'भोर की हवा', 'युग परिवर्तन', 'विश्व के साथी'–ये गीत समय के साथ–साथ चलते हुए भावपूर्ण सृजन हुए हैं।

इस गीत संग्रह का शीर्षक गीत एक सजग आह्वान है, जो कई आयामों पर दृढ़ता से विजयघोष करती हुई लेखनी की धार से समय को बेचने और उसपर विजय की बात करते हुए उद्वेलित करता सृजन है, जो नव युग के उत्थान के लिए समर्पित कवि के भीतर की हुंकार है, यह एक बेजोड़ रचना है–

''लेखनी आयुध तुम्हारी
कम न आँको तीक्ष्ण है ये
जागरण का मंत्र घोषित
चक्रधारी कृष्ण है ये
पग उठेंगे वक्ष खोले
क्रांति की हुंकार लेकर।''

जिस कृष्ण ने समूचा महाभारत रच दिया। संसार को गीता जैसा ग्रंथ दिया। कवि या रचनाकार को मिश्र जी वहीं आदर देते हुए उसके बराबरी में लाकर खड़ा करते हैं।

इसी क्रम में गीत 'क्षणभंगुर' की चर्चा भी आवश्यक समझती हूँ, जो चरित्र हमेशा से मस्तिष्क में कौंधता है कि उस प्रतिज्ञा का क्या औचित्य जब सामने अन्याय की सीमा पार हो रही हो, उस भीष्म प्रतिज्ञा का क्या मूल्य जहाँ सत्य पराजित हो रहा हो, नारी की अस्मिता का क्षरण हो रहा हो... इसलिए यहाँ इसके विरोध में जाकर मिश्र जी कहते हैं–

''मैं भीष्म नहीं क्षणभंगुर हूँ
निर्लिप्त काल के माथे पर
सच्चाई का नव अंकुर हूँ
मैं सीमित नहीं प्रतिज्ञा में
मेरा पथ बहुआयामी है
मन नायक है अधिनायक है।''

इस गीत में कवि का अपने समाज, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य से अडिग रह सत्यानुगामी चरित्र के दृढ़संकल्पित व्यक्तित्व का परिचय दे रहे समाज में जागरूकता का परिचायक है।

इस प्रकार सूर्य प्रकाश मिश्र द्वारा लिखा गया यह काव्य संग्रह कई मामलों में आज लिखे जा रहे गीतों में एक अलग पहचान के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है, जिसे पढ़कर पाठक कहीं भावुकता में बह जायेगा, तो कहीं मन यायावर हो समूचे विश्व का साथी बन आज के धर्मयुद्ध में विदुर या भीष्म नहीं, वरन युग परिवर्तन के सारथी बनने में वो कहाँ खड़ा है, यह स्वयं ही निर्णय करने को बाध्य हो जायेगा। भावपक्ष की प्रधानता के साथ कलापक्ष भी सराहनीय है, जिससे यह पाठकों के सम्मुख अपने प्रतीकों और बिम्ब के लिए सराही जायेगी, मिश्र जी को इसमें महारत हासिल है। मैं आशा करती हूँ कि यह गीत संग्रह साहित्यप्रेमी के पास जरूर होना चाहिए। इसके साथ ही गीतकार सूर्य प्रकाश मिश्र जी को इस गीत संग्रह की हार्दिक बधाई!

लेखक सूर्य प्रकाश मिश्र
प्रकाशन–लिटिलबर्ड पब्लिकेशन,
प्रथम संस्करण–2022, मूल्य–280/–

समीक्षा

साहित्य की गुमटी : व्यंग्य की तीखी कुल्हाड़ी

आर पी तोमर
समालोचक एवं अंतरराष्ट्रीय पत्रकार
महावीर इन्क्लेव, नई दिल्ली
मो. 94577 14100,

हाथ में आई 'साहित्य की गुमटी' को देख मुझे लगा जैसे बड़ी–बड़ी कोठियों पर कुटी लिखा होता है, उसी प्रकार की यह साहित्य की गुमटी है। एक तरफ जिज्ञासा, दूसरी तरफ जाने–माने लेखक धर्मपाल महेंद्र जैन का नाम। मैंने पाया कि साहित्य की गुमटी धर्मपाल जी की अन्य कृतियों से बीस नहीं, बल्कि इक्कीस ही है, जो हास्य–व्यंग्य के आईने में समाज और मानव स्वभाव तथा व्यवस्थाओं का गहन अवलोकन कराती है। यह कटाक्षपूर्ण टिप्पणियों, शहरी व ग्रामीण पृष्ठभूमि और सामाजिक विसंगतियों का विस्तृत खाका एक साथ खींचती है। यह पुस्तक भी उनकी अन्य पुस्तकों की तरह से व्यंग्य का खजाना अव्यवस्थाओं पर हथौड़े जैसी चोट और पाठकों के लिए अविस्मरणीय ज्ञान, मनोरंजन व बौद्धिक उत्तेजना का सागर है। यह आम से लेकर खास और साहित्य के अनुभवी पाठकों के लिए शोध सामग्री प्रदान करनेवाली कृति है। जैसे गुदड़ी में ही लाल पैदा होते हैं और गुदड़ी में ही हीरे छिपे होते हैं, उसी तरह से साहित्य की इस गुमटी में अड़तालीस लाल छिपे हुए हैं, वह भी एक से बढ़कर एक।

'जहर के सौदागर' रचना में व्यंग्यकार धर्मपाल महेंद्र जैन आजकल के हालात पर व्यंग्य कसते हुए लिखते हैं कि जहर भी असली–नकली और व्यापार बन गया है। बाजार में जहर का स्टॉक कम पड़ गया है। किसानों को बिना जहर आत्महत्या करनी पड़ रही है। युवा पेपरलीक और बेरोजगारी में ही दम घोट रहे हैं। दरिंदे रेप पीड़िता को मार–काटकर फेंक देते हैं। दुनिया के जहर पर भी दबंगों और दादागीरी करनेवालों का एकाधिकार है। वे दुकानदारों को कहते हैं कि जहर बेचोगे, तो हमें ही बेचोगे, अन्यथा, नहीं बेचोगे तो बचोगे। रचना में कहा गया है कि जिसकी लाठी उसकी भैंस। 'किनारे का ताड़ वृक्ष' में व्यंग्यात्मक तरीके से लेखक कहते हैं–ताड़ वृक्ष यदि ताकतवर का है, तो उसे सब अपना मानने लगेंगे। इसे महाराष्ट्र अपने समुद्र किनारे का बताएगा, केरल वाले अपनी संस्कृति का प्रतीक बताएँगे, चेरापूंजी वाले उसे सौष्ठवी प्रजाति करार देंगे, भले ही यह कबीर के इस दोहे से मेल खा रहा हो–''बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर। पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।'' मोबाईल की अंधी दुनिया में खोए लोगों की आँख खोलती 'वाट्सऐप नहीं भाट्सऐप' नामक रचना में तीक्ष्ण व्यंग्य बाण चलाते हुए धर्मपाल जी लिखते हैं–''रात के बारह बज गए हैं। निशाचरों के रचनात्मक लेखन का समय हो गया है। सारा देश जब सो रहा हो, तब साहित्यकारों और उल्लूओं को अपना कर्तव्य निबाहना होता है। वाट्सऐप समूह में आया चक्रवाती तूफान शांत हो गया, तो यह भाट्सऐप कथा मैंने भी लिपिबद्ध कर दी है, ताकि सनद रहे।''

राजनीतिज्ञों की खाली घोषणाओं की पोल खोलती रचना बम्पर घोषणाओं के जमाने में लेखक ने इस तरह से व्यंग्य को परोसा है कि पाठक की न तो हँसी रुकती है और न ही पतन का क्रम। वे ख्याली पुलाव वाली राजनीति पर प्रहार करते हुए लिखते हैं कि आप अमेरिका से लेकर जिम्बावे तक की सरकार की घोषणाओं के पुलिंदा देखें, तो आपका दिमाग घूम जाएगा। सब एक ही थाली के चट्टे–बट्टे हैं। हर देश में गरीब हैं। उनके लिए घोषणाएँ होती हैं, पर बिचौलिये अमीर हो जाते हैं। भारत को ही ले लें। जेल में कैद मुख्यमंत्री समेत देश के अट्ठाइस–तीस मंत्री, सैकड़ों छुटभैये उपमुख्यमंत्री और कैबिनेट मंत्री ऐसे ही हैं। वे शौचालय में भी घोषणाएँ ही सोचते हैं। घोषणाओं की प्रगति वे नहीं बताते, प्रगति तो बाबू बताते हैं। वे काम गिनाते हैं। धोबी का गधा पाँच क्विंटल कपड़े लादकर ले जाता है, तो बताता थोड़े ही है कि उसने इतने कपड़े ढोये; लेकिन ढोने का श्रेय धोबी ही लेता है। नेता तो केवल घोषणाएँ करते हैं। इन्हीं घोषणाओं के बूते पर महिलाओं के विरुद्ध घोर अपराध करनेवाले, दिल फेंक ट्रंप अमेरिका की राजनीति में फिर से छा गए। इजरायल ने स्वरक्षा अधिकार की घोषणा कर चालीस हजार लोग मार डाले। रूस की 'नो नाटो' घोषणा ने यूक्रेन को खंडहर बना दिया; लेकिन दुनिया में भाईचारे व शान्ति घोषणा नहीं होती।

'तानाशाह के मकबरे में' व्यंग्यकार ने व्यंग्य की तीखी कुल्हाड़ी से अंधभक्ति भेड़चाल को काटने की कोशिश की है, तो अव्यवस्था पर भारी हथौड़े से वार किया है। आज के भक्तिकाल में चमचागिरी करनेवालों पर व्यंग्य का खंजर चला है, तो सबक भी दिया है कि जो जैसा होगा वैसा ही सोचेगा। अपने तरीके से कटाक्ष करने में माहिर धर्मपाल जी ने 'विदेशी डिबेट में बाबा' की रचना की है, जिसमें टीआरपी का खेल दिखाया गया है। टीवी चैनलों की गर्मागर्म बहस में एंकर बोलता है–''घबराइये नहीं। दो सेकेंड का समय कहने का है। आपमें दम हो तो दो मिनट चिल्लाइए। ये कोई संसद तो है नहीं कि हम आपका माइक बंद कर देंगे। भला कोई डिबेट कभी खतम होती है क्या!'' इसमें जहाँ भारतीय संसद पर कटाक्ष किया गया है, वहीं महाकुम्भ पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि करोड़ों लोग पानी में डुबकी लगाते हैं, पर पानी पवित्र ही रहता है। 'राजा और मेधावी कम्यूटर' में सपनों की दुनिया में खोए राजा की बखिया उधेड़ी गयी है। पोल खोलती इस रचना में सोलहवीं सदी में रह रही जनता को इक्कीसवीं सदी में पहुँचे राजा की नींद तोड़कर उसके सामने सच खड़ा किया गया है।

वैसे तो शीर्षक 'भाषा के हाइवे पर गड्ढे ही गड्ढे' अपने आप में खुद बयाँ कर देता है कि लेखक पैनी तलवार लेकर व्यवस्था पर प्रहार करने को तैयार बैठे हैं। उससे भी आगे जाकर धर्मपाल जी साफगोई से कहते हैं कि बिना सरगम साधे केवल गला फाड़कर आलाप मारने और मुरकियाँ के पैबंद लगाने से कोई गायक नहीं बन सकता। वे सीख देते हैं कि अब जब आलोचक बन ही गहे हैं, तो मेरी तरह से खुलकर आलोचना करें। आपकी आलोचना का डंका अवश्य बजेगा। यह रचना बहुत विचलित करती है। यह चिंता पैदा करती है कि हमने यदि मंदबुद्धि और चमचे लेखकों को साहित्यकार मानना शुरू कर दिया, तो सच्चे कलमकार अपनी कलम तोड़ देंगे। अगला शीर्षक 'लाइक बटोरो और कमाओ' है, जिसमें लाइक की कमाई पर सटीक व्यंग्य किया गया है। लेखक कहते हैं कि निष्क्रिय लोगों को सक्रिय करने के लिए एक सज्जन दूसरे को सुप्रभात बोलते हैं और उनकी आवाज सुनकर कहते हैं कि खुशी हुई कि तुम जिंदा हो। सामनेवाला ने कहा है कि ये क्या बात हुई, मैं पिछले इकहत्तर सालों से जिंदा हूँ। तब पहला बोलता है कि जिंदा हो, तो फेसबुक पर दिखा करो। मेरे टाइम लाइन पर एक मिनट विडियो देखो और कमेंट्स करो तो मुझे पता चलेगा कि मेरा बंदा जिंदा है। रोज सुबह–शाम खुद भी लाइक करो और भाभी व बच्चों से भी कराओ। लेखक दुनिया में दिन–रात का अलग–अलग समय देते हुए कहते हैं कि वैश्वीकरण के इस दौर में लोगों के पास सोने का भी समय नहीं बचा है; क्योंकि दुनिया के किसी भी कोने से उनका कोई आभासी परिजन बतियाना चाहे, तो वे उपलब्ध रहें।

साहित्य की गुमटी में 'सबसे बड़ा प्रोफेसर हिंदी का' शीर्षक वास्तव में हिंदी की पीड़ा को व्यक्त करता है। यह ऐसी रचना है, जिसमें

तीक्ष्ण बाण चलाते हुए रचनाकार ने हिंदी की दुर्दशा का आईना दिखाया है। व्यंग्यकार कहते हैं कि अंग्रेजों की मुख्य बसावट वाले देश में गेहुँए रंग का कुलीन विदेशी भारतीय मिल जाये, तो आगन्तुक भारतीय प्रसन्न हो जाता है। बातें होती है तो कई बड़े स्वर्गवासी लेखक–लेखिकाओं के चरित्र का पोस्टमार्टम होता है। उनके वहीं से इतना बदबूदार विसरा निकलता है कि इन स्वर्गवासियों को साहित्यकार मानने में घिन आने लगती है। दया की पात्रा हिंदी को लेकर धर्मपाल जी लिखते हैं कि ''कुछ बड़े पुस्तकालय खंगाल लो। हिंदी की कोई पाठ्यपुस्तक किसी गाइडलाइन्स का पालन करते हुए बनी हो, तो मुझे बताना। वह हिंदी की पाठ्यपुस्तक है, कोई दारोगे का रोज़नामचा (डायरी) नहीं, जो किन्हीं नियमों का पालन करे।''

'सरकार बनेगी तो कचरा हटेगा' रचना में व्यंग्यकार ने जमकर राजनीति की बखिया उधेड़ी है और कहा है कि राजनीति में किस तरह से कचरा भरा पड़ा है, जिन्हें कहीं और काम नहीं मिलता वे राजनीति में आ जाते हैं। उन्होंने अपने अंदाज में कहा है कि सारे देश का कचरा बुन–चुनकर दिल्ली में आता है और लैंडफिल की बजाय राजनीति में पसर जाता है। जनता दिल्ली में हमारी सरकार बना दे, तो हम भी दिल्ली को कचरे की राजधानी बना दें। हम दिल्ली के चारों ओर लैंडफिल–ही–लैंडफिल बनवा देंगे।

पत्नी की नजरों में पति हमेशा उसी तरह से पप्पू यानी कि छोटा होता है, जैसे कि देशवासी राहुल गाँधी को पप्पू मानते हैं। 'बड़ा हुआ तो क्या हुआ' रचना में व्यंग्यकार के शब्दों की बाजीगरी कमाल की है। मैंने आपको यहाँ कुछ हिंट दे दी है, बाकी आपको खुद पढ़ना पड़ेगा। 'रक्त बीज का क्या मतलब' में लेखक बड़े ही सलीके से फिल्म के माध्यम से रक्त बीज का मतलब ऐसे समझाते हैं कि धीरे का झटका जोर से लगता है। अब हम आते हैं 'होरी खेले व्यंग्यवीरा अवध में' पर इसमें संपादक को पात्र बनाकर उसकी धुलाई की गई है। उसकी थोड़ी–सी झलक आपको दिखाता हूँ, गरीब की जोरू और संपादक की पत्नी सबकी भाभी होती है। क्योंकि वे ही खोहे भरी गुजिया खिलाती है, वे ही भांग को ठंढाई कहकर परोसती है। होली का गान गाते लोग संपादक जी को छेड़ते हैं। 'संपादक में अकल को टोटो, कांसे निकारे ने मांजे लोटो।'

''चुनरी में डारे अबीर अवध में
गमछे को रंग में रंग दे संपादिया।
रंग–बिरंगी समग्रियाँ छापे
बड़ो ही रंगीलो देखो संपादिया।''

भारत में सत्तापक्ष ने किस तरह से ईडी को ताकतवर व राजनीतिक हथियार बना दिया है। ईडी के बेजा इस्तेमाल की पोल खोलती 'ईडी है तो प्रजातंत्र स्थिर है' रचना में धर्मपाल जी ने कलाकारी करते हुए जमकर मारा भी और रोने भी नहीं दिया। रचना के एक अंश की बानगी देखिये, तो आपको बाहुबलियों से डर नहीं लगता। कहीं उन्होंने आपको ही निपटवा दिया या आपके नाम की सुपारी दे दी तो? इस पर नेता जी बोले–''हम राजनीतिज्ञ हैं, दोमुँहें साँप जैसे। हमारे एक तरफ ईडी है, दूसरी तरफ सीबीआई। हमको काहे का डर। सुनहरे बाहुबली ने कभी ऊँच–नीच की, तो हमें उनकी फाइल भर दिखाना है। कोई कितना भी बड़ा क्यों न हो, ईडी से अधिक पावरफुल थोड़े ही है। ईडी है तो प्रजातंत्र स्थिर है। सीबीआई इशारा कर दे, तो बाहुबली सारे विपक्षियों को हमारे खेमे में ला सकता है। प्रजातंत्र के चार स्तंभ– ईडी, बाहुबली, सीबीआई और बुलडोजर हैं। लेखक ने कारपोरेट घरानों पर भी कुल्हाड़ी चलाई है। प्रख्यात साहित्यकार परसाई जी की आत्मा को पात्र बनाकर 'विदेश में परसाई से दो टूक' रचना में धर्मपाल जी लिखते हैं–''अच्छा है आप आत्मा बनकर आए और विदेशी धरती पर आए। भारत पहुँचे होते, तो अब तक आपकी आत्मा के रेशे–रेशे पर विमर्श हो जाता और गंगा किनारे की रेत में आपको भी गाड़ दिया जाता। यदि आप सशरीर भारत पहुँचे होते, तो या तो आपको संस्कृति रक्षकों की भीड़ जिंदा जला देती वा राष्ट्रवादी पुलिस घुसपैठिया समझकर एनकाउटर कर देती।'' 'स्वर्णभस्म फाँककर लिखनेवाले' रचना में बिकाऊ मीडिया व राजनीतिज्ञों की साठगाँठ का कच्चा चिट्ठा खोलकर लेखक ने निडरता व साफगोई का परिचय दिया है। लालच बुरी बलाय के मुहावरे को 'प्रजातंत्र की अंगूठी' रचना में साक्षात् किया गया है, तो प्राकृतिक दुनिया की सैर 'एलर्सली पार्क की बेंच' में कराई गई है। शोहरत पाने के मौके किस तरह से भुनाए जाते हैं, इस पर सटीक व्यंग्य किया गया है 'साहब को जुकाम है पर...' रचना में।

'संस्कृति संक्रामक बीमारी है' रचना की अंतिम पाँच लाइनें–श्वेत डकैतों और माफिया–गिरोहों ने राजनीति को अब अपनी दासी बना लिया है। हर कहीं पैसे में संस्कृति है। जमीनी स्तर से जेबें भरना शुरू कर, विदेशी सौदों को स्विट्जरलैंड में अमली जामा पहनाने की संस्कृति हिलोरें मार रही है। सरकार, मजबूत सरकार बन रही है। इक्कीसवीं सदी में हरामखोरी संस्कृति के रूप में प्रतिष्ठित हो रही है। 'कुर्सी एक चाँदीलाल अनेक' रचना में नेताओं की कारगुजारी पर आक्रमण करते हुए व्यंग्यकार कहते हैं–इन दिनों नेतागीरी संक्रामक बीमारी की तरह फैल रही है। अब नेतागीरी त्याग–तपस्या वाली नहीं रही, जो समाज को कुछ दे! यह समाज को चूसने, रिश्वत बटोरने और शक्ति प्रदर्शन के लिए, भीड़ खरीदने के लिए उपजी नेतागीरी है। किसी को नेता बनना है तो वह सैकड़ों छुटभैयों को पार्टी का झंडा और डंडा थमाकर संक्रमित कर देता है। इनमें से कुछ पॉजिटिव होकर कॉलेज, यूनिवर्सिटी, पंचायत और नगरपालिकाओं के जरिये राजनेता बन जाते हैं। तब चाँदीलाल जैसा नेता खुद को युगप्रवर्तक मानने लगता है। इसी तरह के व्यंग्य बाण 'चिपको और जेब भरो' में करते हुए छल–छद्म की राजनीति की पोल खोलते हुए धर्मपाल जी की कलम ने कोई रहम नहीं किया है। 'धर्मरक्षक सदाचारी' में भी कथित धर्मरक्षकों को रगड़–रगड़ कर धोया गया है। मूर्खो, मुझमें हवा भरो, हर जिले में विधानसभा बनाएँगे, संस्कृति ढँककर रखने की चीज है, अफवाह को अफवाह रहने दें, अतुल्य इंडिया में 'जी ट्वेंटी' आदि सभी रचनाएँ दिल व दिमाग के पुर्जे ढीले कर देनेवाली है। खेल की दुनिया में पहलवानों के साथ हुई बेइंसाफी का खाका खींचने में भी लेखक ने कोई कमी नहीं छोड़ी है। अंतिम रचना रेवड़ियों से नेताजी को मालामाल करते हुए रचनाकार धर्मपाल जी ने अपना पूरा दमखम लगाकर व्यंग्य के तीरों को कैसे मिसाइल बना दिया है, इसका पता आपको तब लगेगा, जब आप खुद साहित्य की गुमटी का रसास्वादन करेंगे। मैंने तो आपको इसका ट्रेलर दिखाया है, पूरी फिल्म देखने के लिए आप इसे मँगवाएँ। 'साहित्य की गुमटी' को मैंने इस उद्देश्य से पढ़ना शुरू किया था कि इसमें आलोचनात्मक कथानक ढूँढना है, समालोचना की जगह समीक्षा करनी है; लेकिन 'जहर के सौदागर' से लेकर अंत तक की रचना 'रेवड़ी बाँटने वाले मालामाल' तक गिद्ध दृष्टि से पढ़ने के बाद भी मैं नकारात्मक नहीं खोज पाया। मैं यह सोचने पर भी विवश हूँ कि हजारों मील दूर विदेश में बैठे धर्मपाल जी के पास दूरदृष्टि और तीक्ष्ण दूरबीनरूपी बुद्धि है, जो कनाडा में रहते हुए भी वे मानवीय दुर्बलताओं के आधार पर भारत व उससे बाहर के देशों में अव्यवस्थाओं, प्रकृति, संस्कृति, मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था व सजगता, राजनीतिक स्थितियों, समाज व आमजन की पीड़ा तथा वेदना, पारिवारिक जरूरतों और उलझनों का पता लगा लेते हैं और उन्हें व्यंग्य रचनाओं के माध्यम से बड़ी सफाई से कागज पर उकेरते हैं। 'साहित्य की गुमटी' में लेखक धर्मपाल जी ने ईमानदारी को तराजू में तोला है। रचनाओं के माध्यम से व्यंग्य के विधान और विधि का अगर सहज आलंबन लिया है, तो व्यंजना की परिधि से कोसों दूर जाकर पुस्तक की

रचनाओं को नैसर्गिक प्रवाह में ले जाते हुए हास्य की अकाट्य मिसाल कायम भी की है। यही नहीं, बल्कि सभी रचनाओं में शिल्प और भाषिक नवीनता है। पाठकों को रचनाओं के प्रति उत्साहित व आंदोलित करना व्यंग्यकार का उद्देश्य इस पुस्तक में सौ प्रतिशत पूरा हुआ है। निश्चित ही पाठकों को लेखक के व्यंग्य बाण प्रफुल्लित करेंगे और प्रस्तुत लालित्य मोहित करेगा। व्यंजना में अभिव्यक्त ये रचनाएँ रसिकों की साहित्यिक कसौटी पर खरी उतरती हुई नजर आती हैं। व्यंग्यकार 'धर्म दा' की इस पुस्तक 'साहित्य की गुमटी' ने भी पाठकों की अपेक्षाओं को पूरा किया है। इसके लिए धर्मपाल जी को साधुवाद और सलाम।

साहित्य की गुमटी (व्यंग्य संग्रह), Dharmpal Mahesh Jain
22 Farrell Avenue Toronto M2R 1C8 CANADA
प्रकाशक शिवना प्रकाशन सीहोर, प्रथम संस्करण 2025, मूल्य 275 रु.
मो.–4162252415

सम्पादक !
नमस्कार! 'सुसंभाव्य' निरंतर निखरती जा रही ऐसी पत्रिका है, जिसका मुख्य स्वर समीक्षा और आलोचना का है। अप्रैल जून अंक अद्यतन पढ़ा। कहानी, गजल, कविताएँ सभी प्रभाव छोड़ती हैं। आपके संपादकीय की तो बात ही निराली है। उम्मीद है जल्द सभी संपादकीय इक्कठे करके पुस्तक रूप में हिंदी जगत के सामने आएंगे। नए घरातल पर लिखी एक पुस्तक की समीक्षा भेज रहा हूँ। उम्मीद है प्रकाशित करेंगे। पुनः आपको बधाई।
डॉ. संदीप अवस्थी

कविता

सुभाषचन्द्र झा
(बिहार प्रशासनिक सेवा)
पूर्व विशेष सचिव सामान्य प्रशासन विभाग
मोबाईल–9431208428

छोटे शहर का प्रेम

कितना यादगार होता है
छोटे शहर का प्रेम
लहसून अदरख प्याज हरी मिर्च के
शुद्ध देशी घी में छौंक समान
स्वादभरा सुगंधित संगीतमय
अंतरंग आत्मीय सम्मोहक
मखमली रहस्य–सा वर्ज़िन
बंदिश आकर्षण के घेरे में
दो अनजानों के वर्जित स्पेस में
परस्पर रिक्तता भरने के उपक्रम में
अव्यवस्थित होते हुए
इसी छोटे शहर में मुझे
मुझे तुमसे और तुम्हें मुझसे
प्रेम हुआ... प्रेम हो गया
पारदर्शी निर्दोष प्लेटोनिक प्रेम
पलकें मूंद मुझे महसूस करती तुम
तुम्हें अपने अहसासों में कैद करता मैं
कितनी हसीन लगती थी तुम
जब कभी उदास हो जाती थी
जैसे सूने खण्डहर के पास
भदमाती 'पूनम' की चांदनी
तुम्हारे प्रेम में गहरे डूबा मैं
अमरवेल–सी मुझसे लिपटी तुम
जाने क्या तलाश करती मुझमें

उस छोटे से शहर में
मैं तुम्हें नहीं कहना चाहता प्रेमिका
इस्तेमाल नहीं कर सकता प्रेम शब्द
अपने प्रेम के मुरझा जाने में
तुम्हें दोष नहीं दे सकता
मौसम की वो पतझड़ का था
फूल वापस खिल नहीं सकता
तुम वसंत हो प्रेम–पुष्प का
सुनो, तुम मेरे आँसू की बूँदों को
सँभाल कर रख लेना अपने आँचल में
जैसे मैं तुम्हारे प्रेम–अर्ध्य को
अपने हर अभिशप्त कालखंड में
सपने–सा संजोए हूँ
कई जन्मों के बंधन की तरह
सुनो, ये शहर प्रेम का सगा नहीं होता
शहर निगल जाता है प्रेम, प्रेम–कविता
ऊबे थके–हारे शोर के बीच
जहाँ डायल किये गए अधिकांश नम्बर
गलत और व्यस्त नजर आते हैं
अपने मतलब की तलाश करते हुए
शहर में दबी होती हैं प्रेम की स्मृतियाँ
भुलाये नहीं भूलता, फिर भी
हर बार नव वर्ष में छोटे शहर का प्रेम
कितना यादगार होता है!!

समीक्षा :

'प्रेम न करियो कोय'

डॉ. संदीप अवस्थी
संपर्क – 7737407061
6279272900

गांधी की अनलिखी प्रेम कहानी (गांधी और सरलारानी चौधरानी : अलका सरावगी)

मानव मात्र से प्रेम की भावनाएँ और संवेदनाओं को दबाकर या खत्म करके उनके उत्थान और भले की बात नहीं की जा सकती। मनुष्य अपने आपमें ही भावनाओं का सेतु भी है, तो उस पर चलने वाला पथिक। वह लोकतंत्र सचमुच बड़ा है, जहाँ के व्यक्तित्व अपनी सोच, व्यवहार को छुपाते नहीं, बल्कि धरोहर के रूप में छोड़ जाते हैं। यह हमारे ऊपर है कि समय काल से हम उसकी कैसी और किस तरह की व्याख्या करते हैं। अलका सरावगी, जिन्हें युवा अवस्था में (हालाँकि वह अभी भी युवा है) ही साहित्य अकादमी पुरस्कार पहले उपन्यास कलि कथा वाया बायपास के लिए प्रदान किया गया, ने यह पुस्तक शोष, तथ्यों का संकलन और उनका विश्लेषण करके लिखी है।

गांधी जी प्रारंभ से ही देशी–विदेशी लेखकों के लिए एक ऐसी गुत्थी रहे हैं, जो जितना सुलझाता है, उतनी ही उलझती जाती है। वह एक सिरा पकड़कर वर्षों के शोध से उसके अंत तक पहुँचता है, तो पाता है यह अंत नहीं, बल्कि नई शुरुआत है या एक और अगली कड़ी की पूर्व तैयारी। अधिक दूर न जाते हुए अभी–अभी गांधी जी पर आई कुछ पुस्तकों और उनके अलग–अलग मिजाज को देखें। 'गांधी जिंदा है' एक लंबा नाटक है, जो इस बात से प्रेरित है कि आज के समय के मूल्य और गांधीवादी मूल्यों में कितना अंतर आ गया है। मूलत: कवि और स्वभाव से चिंतक मित्र रासबिहारी गौर ने यह नाटक लिखा है। बिना किसी पर आक्षेप के चदरिया झीनी बीनी रखी गई है। दूसरी पुस्तक इतिहासकार सुधीर चंद्रा की है, जो गांधी की सोच और उनके विचारों का विश्लेषण ही नहीं करती, बल्कि कई नए और गंभीर पहलू भी सामने रखती है। तीसरी पुस्तक अधिक महत्वपूर्ण इसलिए हो जाती है कि यह गांधी जी की प्रमुख किताबों यथा सत्य के मेरे प्रयोग, स्वदेशी की अवधारणा और किताबों के मुख्य मुख्य अंशों का संपादित स्वरूप है और अभी वर्ष दो हजार तेईस में आई अलका सरावगी की 'गांधी और सरला देवी चौधरानी' पुस्तक है। यह दरअसल एक ऐसा उपन्यास है, जिसमें तथ्यों के साथ थोड़ी छूट भी ली गई है और एक दिलचस्प वितान बुना है। (मैं यह जरूर जानना चाहूँगा कि यह शीर्षक क्या अलका जी ने मूल पांडुलिपि पर दिया था या बाद में प्रकाशक और मित्रों के दबाव में दिया गया?) कुछ अनछुए पहलुओं, यथा गांधी का दोस्त, देश के लिए जुनून और सबसे बढ़कर एक इनोवेटिव लर्नर के स्वरूप को यह किताब हमारे सामने लाती है। जब आप किसी के प्रभाव में उन चीजों को भी करने लगते हैं, जो कभी की नहीं। जब आप उन रास्तों पर चल पड़ते हैं, जहाँ चलने की हिम्मत कोई दे नहीं पा रहा था। जब आप बिना बहस के हर बात मानते हो और जब आप इंतजार करते हो कि अगला कुछ और कहे और उसे मैं सबसे अच्छे से करके दिखाऊँ। तो इसे प्यार कहेंगे या गांधी के प्रति सरलादेवी का सहज आकर्षण या देश के लिए कुछ करने का ज़ज्बा–यह पाठक खुद अपने दिल से पूछे, जवाब मिल जाएगा। और मेरा सवाल है–गांधी नहीं जानते होंगे, देश–विदेश की इन प्रबुद्ध कुलीन महिलाओं का उनके प्रति (या उनके कार्यों के प्रति) आकर्षण? वह चतुर बनिया, राजकोट के दीवान का बेटा और लंदन से बेरिस्टरी तीन साल पढ़कर आया, वहाँ रहा सब जानता समझता था और एक ही वक्त में चार से पाँच महिलाएँ उनकी दोस्त रहीं। आज की तरह उन्होंने उन्हें बहन (या कुछ महिला करती हैं आज भी भैया–भैया पसंद के पुरुष को भी) नहीं कहा, बल्कि दोस्ती का ही व्यवहार किया। किसी को भी धोखा या छुपाया नहीं, न ही ढोल पीटा। संबंधों को निभाने की यही खूबसूरती भी गाँधी से सीखी जा सकती है और यह नहीं भूलना चाहिए कि उसी टाइम जोन में वह लॉर्ड इरविन, ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल, एटली, वायसराय से लेकर तिलक, गोखले, पटेल, नेहरू, अंबेडकर, जिन्ना से भी बराबर बातचीत कर रहे थे और भूलना नहीं चाहिए जनता के मध्य यात्राएँ भी कर रहे थे और सविनय अवज्ञा, नील आंदोलन, दांडी मार्च से लेकर रॉलेट एक्ट विरोध सहित कई आंदोलन भी कर रहे थे। पूरे विश्व में ऐसा ऊर्जावान व्यक्तित्व नहीं मिलता।

यह किताब एक नए दृष्टिकोण से गाँधी को जानने और समझने का अवसर देती है। हालाँकि गल्प अधिक है और कुछ प्रसंगों की व्याख्या लेखिका ने अपनी कल्पना और सुविधा से की है।

यह पुस्तक क्यों पढ़नी चाहिए?

अंग्रेजों के रॉलेट एक्ट और जलियाँवाला कांड के साथ यह उपन्यास प्रारंभ होता है। उन्नीस सौ उन्नीस (1919) का भारत और उससे पहले उन्नीस सौ पाँच (1905) का बंगाल और वहाँ की गतिविधियों की जानकारी के लिए पुस्तक पढ़ी जानी चाहिए।

दूसरे किस तरह टैगोर ननिहाल पक्ष की प्रखर विदुषी सरला, अपने विचारों और सोच से राष्ट्रवादी गतिविधियों से जुड़ती और भाग लेती है। अर्थात् महिलाओं की स्थिति भारत में प्राचीनकाल ही नहीं, आधुनिक काल में भी सुदृढ़ रही है।

तीसरी और जरूरी बात जो आज भी प्रासंगिक है कि एक महिला का (प्रबुद्ध सामाजिक विचारक) पुरुष से मित्रता का संबंध। क्या आज भी एक विवाहित महिला अपने मित्र को अपने घर बुला और ठहरा सकती है? पति की अनुपस्थिति और सास की मौजूदगी में? यह उस वक्त हुआ और गांधी जी की कार्य प्रणाली, उनका धैर्य और रोज एक पत्र सरला देवी को लिखने का समय निकालना और अंडर द करेंट एक सहज, स्वस्थ आकर्षण, कुछ घटनाओं का महत्व और उस पर गांधी का दृष्टिकोण (अध्याय दो. पृष्ठ 28.29.30) साथ ही कस्तूर (बा) के प्रति उनका एक सख्त और टिपिकल पतिनुमा रवैया। पति चाहे गांधी ही क्यों न हो, वह भारत में पति ही रहता है, हालांकि जल्द ही अपनी गलती को महसूस कर सुधार कर लेते हैं। (पृष्ठ 32)। और एक रोचक बात पुस्तक बताती है की ट्रांसवाल आंदोलन, दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रही के रूप में जेल जाने वाली कस्तूरबा पहली महिला थीं। बड़े ही दिलचस्प ढंग से दो अलग परिवेश की महिलाओं की तुलना कर अलका सरावगी पाठकों के मन में एक सवाल छोड़ती है। लगभग अनपढ़ और ठेठ ग्रामीण कस्तूरबा और उच्च शिक्षित, कुलीन वर्ग की सरला रानी–दोनों में देश हित की भावना। पर जहाँ कदम–से–कदम मिलाकर चलने का साहस, अंग्रेजों के सामने बेबाकी से हट जाने का हौंसला और उसी समर्पण से गांधी और अपनी गृहस्थी को भी देखना, साथ ही समय–समय पर गांधी और उनके छह बच्चों का जन्म। यह भारतीय संस्कृति और प्राचीन परंपरा का ही प्रभाव है, जो कस्तूरबा और उन जैसी अनगिनत नारियों को सरला देवी से कई गुना आगे कर देता है। पढ़ने वाले के जेहन में खुद–ब–खुद कस्तूरबा जगह बना लेती है। (यह याद रखें पाठकगण कि उस वक्त कोई नौकर नहीं थे कस्तूरबा की मदद के लिए। यह सब कुछ इस देश की नारी की ताकत और इच्छाशक्ति ही करवाती है।)

''आनंद लोके मंगला लोके/ बिराजो सत्य सुंदर'' बंकिमचंद्र के सामने कई बार यह गाना मामा रवीन्द्रनाथ टैगोर की उपस्थिति में सरला गाई है। आगे यह भी है कि बंगालियों के लिए पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र के लोगों जैसा मजबूत बनाने हेतु अखाड़े, व्यायामशाला आदि सरला रानी ने कोलकाता में विवाह पूर्व खोली। युवकों की राष्ट्रप्रेम की भावना को दिशा दी। अर्थ यह कि वह स्वतंत्रता संघर्ष में गांधी जी के कार्यों और विचारों को अपने मन से समर्थन दे रही थीं।

तो इन सब बातों के लिए यह उपन्यास पढ़ा जाना चाहिए। हालाँकि इसका गठन और शिल्प इसे एक शोधपरक पुस्तक, गंभीरता से लिखा आख्यान बताते हैं, पर जब काशी का अस्सी, अलग–अलग, बिल्कुल पृथक् संमरण का संकलन, एक उपन्यास हो सकता है, बकौल लेखक के बड़े भाई नामवर सिंह जी द्वारा तो यह तो बाकायदा जुड़ी हुई और मजबूत पटकथा से बुनी हुई सशक्त कहानी है। यह उपन्यास लेखिका की ख्याति में चार चाँद लगाता है कुछ खामियों के बावजूद। स्त्रियों की कमजोर स्थिति, भावनात्मक रूप से जुड़ जाना और निर्णय लेने की अक्षमता मुख्य रूप से उभरकर सामने आती है।

गांधी अनफ्लिटर्ड कॉन्टेंट का खजना और विदुषी, सुंदर, आकर्षक, विवाहिता सरला रानी पुस्तक पढ़ते हुए कई बार लगता है कि हम तत्कालीन भारत के कई अनछुए पहलुओं से दो चार हो रहे हैं। साथ ही प्रबुद्ध और उच्च वर्ग की गतिविधियों को भी देख रहे हैं। हालाँकि कुछ जगह एक पक्षीय भी हुआ लेखिका के द्वारा। जैसे कुलीन, उच्च वर्ग का व्यक्ति राय बहादुर की पदवी से भी अलंकृत है, जो अंग्रेजों के खासम–खास और भारतीयों के खिलाफ हुए इंसान को मिलती है। फिर वही व्यक्ति आगे देशभक्तों की थोड़ी मदद करते लिखा है, हालाँकि स्पष्ट नहीं है। ऐसी कुछ विसंगतियाँ हैं, पर चूँकि यह उपन्यास कल्पनाशीलता और यथार्थ को लेकर चलता है, तो यह बातें दब जाती हैं। अलका जी की खास शैली है, जिससे लगता है सारा घटनाक्रम मानो हमारे सामने ही हो रहा है।

कहानी जैसा बताया, रॉलेट एक्ट और पंजाब की घटनाओं के बाद से प्रारंभ होती है। गांधी जी और उनका 'औरा' कार्य प्रणाली है, तो उधर उन्नीस सौ एक की युवा विदुषी, जो दस वर्ष अपने नाना के साथ पेंटिंग, कविता करती हुई क्रांतिकारियों और सामाजिक विसंगतियों के बारे में अखबारों में लेख लिखने लगती है (अध्याय एक, पृष्ठ 16,17,21,23)। यह भविष्य की मजबूत, साहसी और अपने घर विश्वास करने वाली स्त्री की छवि बताती है; परंतु उस वक्त की कुलीन, बेबाक, सही को सही और गलत को गलत कहने वाली सुंदर, युवा सरला किस तरह और क्यों दस वर्षों बाद लगभग बत्तीस वर्ष की आयु में लाहौर के सफल उद्यमी और वय में काफी बड़े की तीसरी पत्नी बनना कुबूल करती है? जाने क्या मजबूरी रही होगी, अन्यथा यह बात कहानी और उपन्यास को कमजोर बनाती है। क्योंकि ऐसी स्थिति तो बंगाल की लगभग अनपढ़ स्त्री, जो परिवार के फैसले को मानती है, के साथ भी मजबूरी हो तो हो, बरना नहीं होती। हो सकता है उस काल खंड, जो दस वर्षों का है, कि कोई अलग कहानी हो, जिसे लेखिका फास्ट फॉरवर्ड कर देती हैं।

उनका विदुषी, बोल्ड महिला के प्रति आकर्षण, जिसे न जाने क्यों और किसने एक प्रेम कहानी का स्वरूप दिया है, जबकि ऐसा नहीं है। स्त्री सरला रानी का सहज आकर्षण गांधी के कार्यों और व्यक्तित्व के प्रति। उधर देश के लिए, खासकर स्त्रियों में जागृति और चेतना के लिए, उन्नीस सौ उन्नीस के भारत में, जब स्त्रियों का बाहर निकलना कम था और आंदोलनों में भाग लेना तो और भी कम, तब मंचों से पंजाब, बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र आदि की सभाओं में गांधी सरला रानी चौधरानी को माइक पर संबोधन और स्वदेशी की भावना का प्रतीक बनाकर भाषण करवाते। राष्ट्रहित में यदि परस्पर संबंधों और दोस्ती का उपयोग होता है, तो यह मणिकांचन योग है।

प्यार एक व्यक्तिगत सच्चाई, न कि सार्वभौमिक ।

यह बात सच है कि प्यार, प्रेम की अनुभूति बेहद व्यक्तिगत और उतनी ही गोपनीय होती है। जब दिल और आँखें मौन संवाद करते हैं, तब कोई भाषा शब्द नहीं होते। यह स्पष्ट है कि उस वक्त, आजादी के पूर्व उन्नीस सौ बारह से बीस का समय की आधुनिक, शिक्षित भारतीय स्त्री जिसे मोहनदास गांधी ने नोटिस भी किया और उसकी तरफ आकर्षित हुए। सरला देवी भी प्रेम में पड़ी एक महानायक (?) के। उनके लिखे पत्र, जिनमें भावनाओं की अभिव्यक्ति है, वह महात्मा बनने के बाद गांधी ने सार्वजनिक कर दिए कि ऐसी कोई बात नहीं। मुझे लगता है, वह अपनी इमेज के प्रति अतिरिक्त सावधान और जागरूक थे, जितने जवाहर लाल नेहरू अपनी इमेज से बेफ्रिक और बेलोस। क्या ख्याति और जनसेवा हमें कमजोर बनाती है? क्या हम प्रेम को अपराध या अस्पृश्य मानते हैं? दोस्ती ही बेहतर नाम होता इस रिश्ते के लिए, पर वह भी गांधी ने नहीं दिया। मीरा की तरह सरला रानी ने कई पत्रों में गांधी के प्रति अपने खूबसूरत रिश्तों का उल्लेख किया; परंतु गांधी एक खास मोड़ के बाद उससे बचते रहे, रिश्ते की गहराई से भी और अपनी मनुष्य जनित कमियों को भी काबू करते रहे। जिस अफसाने को मंजिल तक ले जाना न हो मुमकिन। उसे एक खूबसूरत मोड देकर छोड़ना अच्छा (साहिर, जिन्हें अमृता ने धोखा दिया, उस पर अलग लिखा है विस्तार से)। यही गांधी ने किया। उन्होंने आगे सरता रानी को खादी की साड़ी में अनेक महिला समारोह और जागरूकता अभियान में महिलाओं की रोल मॉडल की तरह आमंत्रित किया।

अपने पति के विरोध के बावजूद भी वह क्या जज्बा और चीज थी, जो सरला रानी को गांधी की बातें मानने को मजबूर करती थी? पति ने कई बार विरोध भी किया, पर वह गई तो यह महज आकर्षण नहीं था; परंतु एक विवाहिता का एकतरफा प्रेम भी नहीं था। गांधी की तरफ से भी यह आकर्षण था, जो बढ़ता ही गया; परंतु उस बेहद तेज राजनीतिज्ञ ने भारतीय राजनीति में अपनी महत्ता और भूमिका को अच्छे से समझ लिया था।

तभी उनीस सौ बीस (1920) के बाद से वह धीरे–धीरे इसे राष्ट्रप्रेम और 'देश की खातिर' के लिए संबंधों का इस्तेमाल के रूप में खुद से कहते रहे। या कहें झूठा दिलासा देते रहे। सरलादेवी, कुलीन वर्ग की आजाद ख्याल स्त्री, टैगोर के खानदान से गांधी के प्यार और आकर्षण से प्रभावित हो संभवतः तलाक भी ले लेती। पर पुरुष, भले ही वह राष्ट्रपिता महात्मा गांधी हो अथवा सिद्धार्थ और गौतम (बुद्ध और महावीर स्वामी) वह स्त्री के प्रेम, विश्वास और भरोसे को हमेशा तोड़ता ही रहा है। वह भी खुद के महान् बनने और दुनिया के सामने एक उद्धरण बनने। आप बनिए, परन्तु स्त्री के अरमानों, स्वप्न, खुशियाँ, दिल सभी को कुचलकर नहीं। क्या 'प्यार ही ईश्वर' कहने वाले तब नहीं थे? इश्क खुदा है खुदा ही इश्क है, अपनी सुविधानुसार ही प्रयोग होता है? स्त्रियों ने ऐसा नहीं किया, बस एक अपवाद है पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी। जिनके पारसी पति फिरोज गांधी को उन्होंने देश के सुखद और मजबूत भविष्य के लिए ऐसे किनारे किया कि उनके दोनों पुत्र भी कभी उनका नाम नहीं लेते थे।

स्त्री महज अपने प्यार को निखारना और प्यार के बदले प्यार पाना चाहती है और कोई उसकी लंबी–चौड़ी इच्छाएँ, महत्वाकांक्षाएँ नहीं होतीं। वह दिलचस्प है, जब गांधी सरलादेवी से सुरक्षित दूरी बना रहे थे और उन्हें पब्लिक डोमेन में जबर्दस्ती आगे बढ़ा रहे थे। एक प्रसंग है जो अहमदाबाद में गांधी स्मृति पुस्तकालय में सरलादेवी द्वारा लिखित पत्रों में संरक्षित है। वह लिखती हैं, उन्होंने मुझे रेशमी साड़ी की जगह खद्दर की मोटी साड़ी पहनकर आने के लिए कहा। पति उपस्थित थे और उनकी पसंद की साड़ी उन्होंने पहनी थी। पर गांधी तो गांधी थे, अपने मन की करवाने में माहिर। ऐसे अनेक पत्रों के संदर्भों से यह प्रेम कथा उभरती है और आगे गांधी से मोहभंग के बाद उन्नीस सौ तीस में टीबी की बीमारी से एक खूबसूरत युवती की कम उम्र में मौत होती है। क्या इसे भी गांधी का देशहित में बलिदान देना कहेंगे? क्या हर मौके पर बचने और खुद को पवित्र, साफ रखने में स्त्रियों का ही खून, अस्थि–मज्जा लगाया जाएगा?

एक और दिलचस्प यात्रा है, जब गांधी के बुलावे पर अकेली स्त्री

साबरमती आश्रम आती है। वह और नहीं गांधी ही होते हैं, वर्ष उन्नीस सौ इक्कीस, तब भी प्यार और संवेदना के तंतु विकसित होते हैं। वहीं कस्तूर (जगत) बा वह बाद में बनी, उनका जन्म नाम कस्तूर था) से भी मुलाकात होती है, जो शौचालय, कपड़े धोने, गृहस्थी चलाने से लेकर पति सेवा भी करती हैं। छः बच्चे होना प्रमाण है कि राष्ट्र–सेवा के साथ पतिधर्म और दाम्पत्य संबंधों का निर्वहन भी अच्छे से करना चाहिए।

वह कुलीन वर्ग की स्त्री, जिसे अपने राय बहादुर वर्ग के उच्च श्रेणी जीवन में कभी कोई काम करना ही नहीं पड़ा होगा, देखती है कस्तूर, गांधी के साथ जीवन बिताने का यथार्थ, निर्मम यथार्थ। यह सारे कार्य जो बैक स्टेज होते हैं, उन्हें कस्तूर या किसी भी बड़े व्यक्तित्व, नेता, समाज सुधारक या आधुनिक संत की पत्नी करती है। तब हर जगह वह यात्राएँ कर पाता, बड़ी–बड़ी बातें, भाषण दे पाता है हजारों की भीड़ के सामने; लेकिन उसकी पत्नी, स्त्री पता नहीं कहाँ पीछे छूट जाती है।

मोहभंग या मजबूरी :

यहाँ से मोहभंग शुरू होता है, जो गांधी प्रारंभ के कुछ वर्षों बाद ही समझ गए थे कि उच्च वर्ग की यह स्त्री आकर्षण फिनॉमिना के तहत जुड़ तो रही है, परंतु उसकी भूमिका और व्यवहार किन–किन चीजों के लिए उपर्युक्त है, यह वह समझते थे। यहां गांधी बिल्कुल सही और कहा जाए एक राह भी खोलते

है असंख्य प्रेम, आकर्षण में बंधे प्रबुद्ध स्त्री पुरुषों के लिए। आप धोखा मत दें और सामने वाले की भावनाओं का आदर भी करें, पर उसे दुख न पहुँचे इस तरह से अपने व्यवहार से उसे संकेत कर दें।

पत्रों के प्रमाण से अलका सरावगी यह स्थापित करने में सफल रहीं कि दोनों ही समझदार थे। संकेतों को बखूबी समझते थे, इसीलिए दोनों ने अपने इस खूबसूरत रिश्ते को अलग मोड़ दे दिया। बाद में पति की इच्छा के विरुद्ध उन्होंने अपने पुत्र को भी

गांधी आश्रम साबरमती में कुछ समय छोड़ा। पर क्या यह मोड़ देना सरला देवी के लिए जानलेवा नहीं हुआ? क्या उन्हें अहसास हुआ कि उनका बड़ी चतुराई से देश और समाज सेवा के नाम पर इस्तेमाल किया गया? बिल्कुल हुआ, किताब में लेखिका पत्रों के माध्यम से यह बताती हैं। किस तरह कई पत्रों में वह इशारे से अपनी भावनाएँ और गांधी की बेरुखी को जाहिर करती हैं। कुछ जगह वह आलोचना भी करती है गांधी शैली की। क्या इस तरीके से ही सब होगा? क्या जो उच्च वर्ग है, वह अपना सच बाँटकर कंगाल बन जाए, तो ही वह राष्ट्रसेवा के लिए उपर्युक्त माना जाएगा? क्या देश की लाखों की जनसंख्या एक सोच एक सिद्धांत पर कैसे चलेगी? बंगाल, पंजाब, उत्तरप्रदेश, बिहार आदि के निवासी और उनकी सोच, व्यवहार, स्तर अलग–अलग है। गांधी के पत्र वैसे ही थे, जो प्रेम की राह छोड़ चुका पुरुष लिखता है। औपचारिक और राष्ट्र सेवा, स्त्रियों के लिए रोल मॉडल बनने की बधाई देते हुए।

पुस्तक रोचक शैली में लिखी गई है और आजादी के वक्त के घटनाक्रम के दूसरे पहलू को भी सामने रखती है; लेकिन मुख्य कहानी, भाव जो दोनों के लिखे पत्रों से उभरकर सामने आता है–एक स्त्री की चाहत और प्रेम की अनछुई भावना का। कीमत स्त्री ही चुकाती है, सरला देवी ने भी चुकाई कम आयु में यह नश्वर संसार छोड़कर। वह दृश्य जो पत्र के आधार पर रचा है जब गांधी गए थे सरला से मिलने। अंत समय से कुछ दिन पूर्व, ''उत्साह से चमकती, खिलखिलाती रवीन्द्रनाथ की पुत्री सम, हर असंभव कार्य को करने की चाह रखने वाली युवती को क्षय, टीबी की बीमारी ने खोखला कर दिया था। बेहद कमजोर और हिलने– डुलने में असमर्थ सरला के सिर पर हाथ फेरते गांधी। दोनों की आँखें मिलती है, बात भी हुई होगी। यही है तुम्हें चाहने, तुम्हारे फिनॉमिना में डूबने का परिणाम?'' शायद यही कहना चाहा होगा। प्रेम न करियो कोय।

गज़लें

डॉ. अंजना वर्मा,
बेगलूर (कर्नाटक)
मो. 8210777500

कहाँ छूटा जमीं–आकाश बचपन का हमारा
समय जो बीत जाता है नहीं आता दोबारा

हुए पोखर कुएँ, तालाब के किस्से पुराने
किया ज़िंदा दफ़न इस झील को लोगों ने मारा

सगे थे सब हमारे देवता–परिजन ही जैसे
नदी–पर्वत हो पाहन या कि कागा ही बिचारा

चला करती युगलबंदी हमारी मौसमों से
कभी होली, कभी कजली, अज़ब वो था नज़ारा

लगा करते घनी अमराइयों में खूब झूले
किताबों का न बोझा था मगन बचपन वो प्यारा

बजाकर ढोल बादल थे बरसते खूब नभ से
नहाना भींगना छुपकर वो बूँदों में हमारा

खुली नदिया, खुली धरती, खुले थे द्वार घर के
किसी से बात करने को समय था ढेर सारा

ज़रूरत आदमी को आदमी की तब बहुत थी
अकेला था नहीं कोई अकेलेपन का मारा।

(2)

बेटियाँ किस लोक में जाएँगी रहने के लिए
उड़ रहे हैं बाज़ चिड़ियों को झपटने के लिए

मौत थी बेहतर कि पाई यातना हद से अधिक
दुखभरी अब है कहानी सिर्फ़ कहने के लिए

नर–पिशाचों का निशाना बन गई मासूम वह
लाज का धागा बचा ना तन को ढँकने के लिए

लाज भी लज्जा से धरती में समाकर छुप गई
पास करुणा के न थे कुछ शब्द कहने के लिए

एक नारी–देह की दारुण कथा जिसने सुनी
सुनके आँखों में बचे आँसू न बहने के लिए

बात कंगूरों की क्या हो नींव जब हिलने लगे
अब उठो इंसान की पहचान करने के लिए

जानवर भी हो न सकते क्रूर मानव से अधिक
आदमी सबसे बड़ी गाली है देने के लिए।

समीक्षा

लौटा हुआ लिफाफा
(समकालीन यथार्थ की अर्थव्यंजनाओं का संकलन)

डॉ. राशि सिन्हा
नवादा, बिहार

कविताएँ अपनी प्रकृति, संरचनात्मक बुनावट में स्वायत्त होती हैं और साथ ही, स्वायत्त होता है कवि जो अपनी वस्तुपरकता से आत्मपरकता की दिशा में बढ़ता अर्थों और उन अर्थों की व्यापकता की व्यावहारिक प्रक्रिया की अन्वेषणात्मक अवस्था में, अपनी संवेदनाओं के कविताई व कवित्व प्राप्य को यथार्थ से जोड़ता चला जाता है। जोड़ने की इस प्रक्रिया में, वर्तमान से अतीत और अतीत से वर्तमान तथा अंततः भविष्य तक की यात्रा के विस्तार में एक–न–एक बार या प्रायः बार–बार अपने परिवेश के अतीत की चेतना की ओर जरूर लौटता है और इस यात्रा में, वर्तमान की सांस्कृतिक–सामाजिक चेतना को संपूर्ण रूप से परिभाषित करने के लिए, अतीत की यात्रा के अंतर्अन्वेषण की अभिव्यक्ति की कोशिश की प्रक्रिया में यथार्थ को ही रचनाकर्म का उद्देश्य मान अतीत के लिफाफे को खोल वर्तमान की अभिव्यक्ति की ओर वापसी की कोशिश करता है–सुप्रतिष्ठित कवि कुमार विजय गुप्त जी की सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'लौटा हुआ लिफाफा' ऐसी ही प्रक्रियात्मक प्रयासों की भावपूर्ण अभिव्यक्ति है।

बिम्ब–प्रतिबिम्ब प्रकाशन, फगवाड़ा (पंजाब) से प्रकाशित 136 पृष्ठों के इस काव्य संग्रह के प्रथम संस्करण में लगभग 73 से 74 कविताओं का संकलन है। की अपनी इस पुस्तक में लेखक ने मानवीय मूल्यों के लिए संघर्षरत बिंदुओं में लुप्त होती मानवीय संवेदनाओं को सुनने और बुनने की सफल कोशिश की है। अपनी इस कोशिश में उन्होंने हाशिए पर लटकते–छटपटाते मूल्यों व चेतनाओं को केंद्र में रखकर लिखा है। इन कोशिशों में कवि, अभिव्यक्ति के प्रारंभ से ही वर्तमान की चेतना में अतीत की आह और भविष्य की राह समेटे, वैश्विक चेतना के सृजक की भूमिका निभाते हुए लिफाफे की वापसी को लालायित अक्षर बुनते दिखते हैं। आत्म कविता, 'अनंत क्लोन कामनाएँ' की पंक्तियों में कवि की ये अभिलाषाएँ मुखर रूप से दृष्टिगत होती है–

''अक्षरों को देखता हूँ
तो बन जाना चाहता हूँ अच्छे–अच्छे शब्द
.....
रंगीन पेंसिलों को देखता हूँ
तो बन जाना चाहता हूँ
नर्सरी का सबसे नटखट विद्यार्थी
नालंदा देखता हूँ
तो लौटाना चाहता हूँ इसका स्वर्णिम अतीत
सिंधु घाटी देखता हूँ
तो विकसित करना चाहता हूँ एक नई सभ्यता
.....
बन जाना चाहता हूँ
कश्मीर के उजाड़ के खिलाफ
.....
उड़ीसा की भूख के खिलाफ
रुआंडा के गृहयुद्ध के खिलाफ
बेटिकन सिटी की शांति
जो कि अनंत कोशिकाएँ हैं मुझमें
और इन कोशिकाओं की अनंत क्लोन कामनाएँ''

ऐसा नहीं कि वापसी की अभिलाषा के तहत मुद्दों और विषयों को लिखने के क्रम में कवि महज अतीत की घटनाओं का क्षणिक याद भर करके रह जाना चाहते हैं; बल्कि प्रत्येक पंक्तियों की स्वतंत्र इकाई में एक स्वाधीन चेतना का बोध भी भरते नजर आते हैं। ऐसा बोध जो चिंतन के गंभीर योजनाबद्ध तरीकों से आबद्ध हैं।

चिंतन के क्रम में इतिहास के पत्रों पर अवस्थित अभिव्यक्तियों की वापसी की अभिकल्पना के द्वारा अन्य कविताओं की पंक्तियों के हरफ़–दर–हरफ़, मानव मूल्यों की स्वाधीन चेतना की पुनर्स्थापना हेतु व्यग्र नजर आते कवि विजय गुप्त जी, संकलन में शामिल रचना, पहचान–पत्र में इन्हीं भावों को अभिव्यक्त करते
दिखते हैं–

''कितनी नामुराद हो गयी अब हमारी पहचान
कि उतारी जा रही कागज के छोटे–छोटे टुकड़ों पर
नाम...उम्र...पिता...पता...फोटो...
और इन सबसे महत्त्वपूर्ण
उस महानुभाव के हस्ताक्षर
जो हमें दूर–दूर तक जानते भी नहीं
लेकिन उबार लेते हैं हमें
पहचान–हीन होने के संकट से।''

सत्य है, हमारी पहचान, समस्त बहुआयामी पहलुओं को समेटे हुए अपने सामाजिक संदर्भों की सीमाओं के भीतर चुनाव के विकल्पों के लिए प्रतिबद्ध है। बावजूद इसके अतीत के अनुभवों और भविष्य की आकांक्षाओं से चुने गये हम स्वर्ग में एक स्वाधीन चेतना के प्रतिनिधित्व निर्माण की प्रक्रिया भी है और यह सबसे बड़ा सत्य है। यह पहचान–पत्र, हमारे इस स्वयं को हमारे संपूर्ण अस्तित्व को कहीं–न–कहीं अध्यारोपित करता महसूस होता है। कवि विजय गुप्त जी अस्तित्व की इन्हीं बुनियादी पहलुओं को अपनी इन पंक्तियों में अभिव्यक्त करते नजर आते हैं। अस्तित्व का अध्यारोपण होना या कर देना समकालीन अंतर्द्वन्दों की घटनाओं को उद्घाटित करता है वे, द्वन्द्व जो व्यक्ति की अस्तित्व–हीनता से जनित आंतरिक चेतना से उत्पन्न स्वरों को उसकी जिजीविषा को समकालीन कृत्रिमताओं और प्रवंचनाओं के शोर में दबा देने का सामर्थ्य रखते हैं। युग के इस विकृत सामर्थ्य को समझने के साथ– साथ कवि प्राणिमात्र की जिजीविषा को भी खूब समझते हैं, तभी तो संकलन में शामिल अन्य कविता, ट्रांजिस्टर में छुपे कत्थई कीड़े के बारे में वे लिखते हैं–

''इन दिनों सबसे ज्यादा जोर–शोर से जारी है
विध्वंस की कलाबाजियाँ
फिर, धुएँ–धुएँ में तलाशी जा रही ज़िंदगी
नष्ट की जा रही प्रजातियाँ
और फिर जीवों के विलुप्त होने पर
व्यक्त की जा रही शानदार चिंतायें
कहीं अपनी संपत्ति को बचाने के लिए
तो नहीं आ छुपा यह जीव सलोना।''

ये महज कविता की पंक्तियाँ–भर नहीं, बल्कि जिजीविषा की पराकाष्ठा की अवस्था है, जो प्रायः सभी प्राणियों में मौजूद है। इन पंक्तियों द्वारा, कवि आज की सामंती सभ्यता के सामाजिक– राजनीतिक दाँव–पेंच में फँसे छोटे प्राणी की जिजीविषा को बहुत सारगर्भित रूप से दर्शाते हैं। एक छोटे–से कत्थई कीड़े के जरिए सामंती सभ्यता में व्याप्त सारे दाँव–पेंच को दर्शाती यह कविता अनायास ही अशोक वाजपेई जी की चींटी कविता की ओर लिए जाती है। हालाँकि विषय–वस्तु के संदर्भ में दोनों कविताओं में बहुत असमानताएँ हैं,

फिर भी भावनाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के साधन के रूप में इतने छोटे प्राणी का चुनाव दोनों को संवेनशीलता के स्तर पर एक साथ खड़ा करती दिखती है। समकालीन बातों को हू–ब–हू लिखता कवि का संवेदनशील हृदय आगे कहता दिखता है–

''ऊपर 'कुम्हरवा' ने बना रखा था घरौंदा
जबकि जरा हटकर
दीवार के जिस्म पर रेंग रही थी छिपकली
.....
दीवार के सीने में ठुकी थी दर्द भरी इक कील
बेपर्द बाहर धड़क रहा था दीवार का दिल।''

आगे इसी कविता में कवि कहते हैं–

''कि अचानक इक रात
छितरा गये तीनों के तीनों काँटे।
जैसे भागती भीड़ के बीच चित्त पड़ीं कोई लाश।''

उपर्युक्त कविताओं के अतिरिक्त, संकलन में शामिल अन्य सभी कविताएँ, समकालीन विसंगतियों में जिजीविषा के अंतर्विरोधों को संपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करती हैं। अभिव्यक्ति के दौरान व्यक्त किये गए भाव–प्रतिमान एक ओर जहाँ सम्प्रति विषमताओं और अंतर्विरोधों को घटना प्रधान बनाकर अभिव्यक्त की गई हैं, तो वहीं दूसरी ओर इनकी अभिव्यक्ति में कवि की स्पष्ट सपाटबयानी भी दिखती है। यह कवि की सपाटबयानी ही है
कि अपने शहर मुंगेर के चौक की घटनाओं को सीधे–सीधे बयान करते हुए लिखते हैं–

''रोज सुबह यहाँ इकट्ठे होते हैं मजदूर
रोज सुबह यहाँ लगती है श्रम की बोली
एक दिन के लिए बिककर खुश होते हैं मजदूर
फिर चल देते हैं एक दिन मालिक के पीछे–पीछे।''

समकालीन कविता की प्रवृत्तियों को समेटती इन पंक्तियों में, कवि आर्थिक उदारीकरण के बाद के दौर के बदलावों में आए श्रमिकों के जीवन की उस बदलाव और दशा की बात करते नजर आते हैं, जो आज भी दुश्वारियों की दमित चेतना का चित्र खींचता ही दिखता है। स्थानीय दशा के आर्थिक–वर्गीय–स्तरीकरण को प्रस्तुत करती इन पंक्तियों में अभिव्यक्ति के स्तर पर भले ही मार्क्सवादी इन्कलाबी स्वर न हों, लेकिन कहीं–न–कहीं इन अर्थों की सत्यता को पूरक करते भी प्रतीत होते हैं, वह भी वैश्विक आर्थिक–वर्गीय–स्तरीकरण के संदर्भ में।

अपनी कविताओं में समकालीनता के सामाजिक आर्थिक, राजनीति जैसे विविध मुद्दों पर अपनी पैनी और परोक्ष व्यंग्यात्मक दृष्टि रखते हुए आगे की एक कविता अपने में, जीवन के तमाम पहलुओं से गुजरती दिखती है, जिसमें कवि ने संवेदनाओं के स्तर पर अपने लोकतांत्रिक मुद्दों में रोजमर्रा की जिंदगी को भी शामिल कर रखा है। इसी संदर्भ संकलन में शामिल एक कविता 'दस से दस तक' में कवि लिखते हैं–

''दस से दस तक
जैसे आयोजित हो कोई भागमभाग प्रतियोगिता
ताबड़तोड़ मार रहा हूँ साइकिल के पेडल।''

इसी में कवि आगे लिखते हैं–

''पोल से टकराकर मुँह थकुचा बैठा वह ऑटो
पास ही खड़े घायल बेचैन चिंतित वे लोग
बीचोबीच कुचली पड़ी वह प्यारी–सी सफेद बिल्ली
दूसरी तरफ जाने को व्यग्र वे स्कूली बच्चे
अपना तीसरा पैर बढ़ा रहा वह सूरदास भी
नहीं दिख रहा मुझे कुछ भी
मुझे पहुँचना है दस से दस तक
पहुँचा तो सिकंदर, वरना दिन–भर बंदर।''

रोजमर्रा के जीवन में शामिल इन घटनाओं की सीधी– सीधी प्रस्तुति से समकालीन दस्तावेज प्रस्तुत करते कवि संकलन की अंतिम कविता 'हे राम' की पंक्तियों के माध्यम से एक अलग ही राजीनीतिक मूल्यों पर अपनी परोक्ष, किंतु स्पष्ट व्यंग्यात्मक दृष्टि रखते नजर आते हैं। वे लिखते हैं–

''पलक झपकते ही बना सकता हूँ तुम्हें
महाभारत का पासा
फेंक सकता हूँ राजनीति की चौपड़ पर
जान लो कि मैं ही हूँ शकुनि इस युग का।''

इसी कविता में वे आगे लिखते हैं–

''हे सर्वशक्तिमान
रह जाओगे अवाक्
जब बना दूँगा तुम्हें बीज नन्हा–सा
और बो दूँगा अयोध्या में।....
''ये है गोधरा, यह गुजरात
यह भारत और यह महाभारत
ये देखो लाशों के पर्वत
खून की नदियाँ
आँसुओं के झील
यह सुनो चीत्कारों–विलापों के गीत–नाद
राजनीति के अट्टहासों की धुन।''

सत्ता में बैठे लोगों की धृष्टता, धर्म के नाम पर की जाने वाली घिनौनी राजनीति के यथार्थ, किंतु व्यंग्यात्मक चित्र भरते कवि विजय गुप्तजी मुझे रघुवीर सहायजी की पंक्तियों का स्मरण करा जाते हैं कि एक पीढ़ी पराई हो गई अपने ही देश में। सत्य है, राम कोई पीढ़ी नहीं, बल्कि वे तो एक विचार, संस्कार और मानवीय चेतना के समस्त शाश्वत आयामों के द्योतक या उससे भी परे हैं। अतः पीढ़ी जैसे शब्दों में बाँधकर उनकी तुलना की ही नहीं जा सकती; किंतु यहाँ मुझे पीढ़ी का तात्पर्य उनके समस्त प्रतीकात्मक मूल्यों से समझ आ रहा है, जिसे हम समस्त रामत्व के संदर्भ में समझते हुए अपने ही देश के राजनीतिक कुचक्रों में फँस खत्म होता देख रहे हैं।

संकलन में शामिल समस्त रचनाओं के मर्म में व्याप्त कवि की संवेदना समकालीन युग–बोध से आबद्ध है। युग बोध से आबद्ध कवि की जीवन–दृष्टि समय की चुनौतियों को स्वीकार करते हुए अपने भाषाई–प्रबंधन में, परिवेश को साकार करते शब्दों को बुनते नजर आते हैं। सीधे तौर पर कहें तो आम आदमी के रोजमर्रा के जीवन में शामिल अर्थों की व्यंजना से युक्त शब्दों के प्रयोग से वर्तमान वेदनाओं को अपनी संवदनाओं में अंगीकृत करते कवि विजय गुप्त जी ने इसे आधुनिक भावों का जामा पहना कर, अर्जित और घटित–दृश्यों से प्राप्त वेदनाओं की अपनी कविताओं में अभिव्यक्त करने की सफल कोशिश की है। इसमें एक बहुत अच्छी बात यह हुई है कि सहज सूजन के माध्यम से कवि आम पाठकों के हृदय में सीधे उतरने का सामर्थ्य रख पाते हैं। बोलचाल की भाषाई संप्रेषणीयता उनके इस संकलन को सहजशः बनाने के साथ–साथ पाठकों को भी सहज बनाने का सामर्थ्य रखती है। मुझे उम्मीद है कि कवि विजय गुप्त जी अपने सृजन की सहजता और गंभीरता से आगे भी पाठकों को सरल, किंतु गंभीर चिंतन से युक्त सृजन प्रदान करते रहेंगे। उनकी तुलिका अहर्निश चलती रहे। हार्दिक शुभकामनाएँ।

समीक्षा

आत्मीय अनुषंग के चित्रः कोशिशों के पुल

डॉ. रणजीत पटेल
मुजफ्फरपुर (बिहार)
मो–6207485329

नवगीत कवयित्री के रूप में अपनी पहवान बना चुकी गरिमा सक्सेना का सद्यः प्रकाशित नवगीत संग्रह 'कोशिशों के पुल' है। संग्रह के सभी नवगीत, सामयिक टकराहट से उपजे हैं। गरिमा जी समय की नब्ज़ टटोलती हैं एवं सम्पूर्ण पीड़ा का अनुमान कर लेती हैं। गरिमा जी के नवगीत संग्रह में वैसी रचनाएँ हैं, जो आस–पास की जिन्दगी से संभव हैं। गरिमा जी की 'अपनी बात' पढ़ने से प्रतीत होता है कि उन्हें गीत परम्परा का ज्ञान है। समय संघर्ष से उत्पन्न पीड़ा कई रूपों में गरिमा जी ने अभिव्यक्त की है। बदलते हुए समय में मनुष्यता का पराभव कवयित्री की मुख्य चिंता व्यथित करती है।

'आज सुबह से/ गुड़िया का मूखड़ा उदास है/ गुड़िया, गुड़िया / को सीने से/ लिपटायी है/ भींच रही/ मुट्ठी अंदर से/ घबरायी है/ स्मृतियों ने / पहन लिया / डर का लिबास है/ छुवन–छुवन / का अंतर / उसको/ समझ आ रहा/ बार–बार उसका घर/ आना / नहीं भा रहा/ डर से दूर/ कहाँ जाये/ हर आस–पास है...।''

'गुड़िया' शीर्षक गीत में गरिमा जी ने आधुनिक सभ्य समाज में हारती हुई निश्छल बच्ची की जिजीविषा को रेखांकित किया है। 'स्मृतियों ने पहन लिया डर का लिबास है।' आज खुलेआम कैसे प्रगति की राह में सुख–शांति लूटी जा रही है। सारी प्रतिकूल परिस्थितियों और विरोधों के बावजूद कवयित्री गरिमा सक्सेना हारने वाली नहीं हैं। कवयित्री 'कोशिशों के पुल' बनाने के लिए आतुर हैं। 'जदि तोर डाक शुने केउ नाओ, तबे एकला चलो' गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की तरह गरिमा जी की आवाजें 'कोशिशों के पुल' संग्रह में अनेक स्तरों पर सुनी जा सकती हैं। कहना न होगा नई सदी में मनुष्य की पीड़ा का अधिकांश भाग सामाजिक एवं राजनीतिक कुचक्रों, षडयंत्रों की देन है। गीत या नवगीत का वर्ण्य–विषय है। 'कोशिशों के पुल' संग्रह के अधिकांश गीत गहरे मानवीय सरोकार को इंगित करते हैं–

''पढ़े हुए अखबारों को हम / बार–बार हैं पढ़ते/ स्वप्नों में जीवन को/ जीवन में स्वप्नों को खोजा / ईद नहीं आयी हिस्से में /रखा रोज ही रोजा/ आशाओं के हिस्से में झूठी / परिभाषा गढ़ते आरोहों के पथ आरक्षित/ मानक है उत्कोची जूते सिलने के बदले में/ पैरे काटते मोची/ सिर के बल आखिर कैसे हम / सोपानों पर चढ़ते।''

उत्कोची समय में अगर कोई सदाकत की चर्चा करता है, वह हास्यास्पद लगता है। अख़बारों को पढ़ने से ऊबासी आने लगती है। रोज–रोज लूट, हत्या, अपहरण, रेप, रिश्वतखोरी की ख़बरें छपती हैं। गरिमा जी के सभी नवगीत अच्छे बिंब एवं शिल्प से संपृक्त हैं। 'पैरे काटते मोची' 'सिर के बल सोपानों चढ़ना' समय यथार्थ का द्योतक है। यह भी सत्य है कि मुक्ति के रास्ते अकेले में नहीं मिलते, जनपक्षीय यात्रा से मिलते हैं। गरिमा जी के हाथ में डिजिटल कैमरा नहीं है, निगेटिव को साफ करके चित्र निकालती हैं। गीत–संवेदना को निष्ठा से उजागर करते हुए पठनीय बना देती हैं–

''सीमेंटेड फर्मों पर उगती / दीखी जिद्दी घास/ धूल फाँकती हुई यहाँ/ पगडंडी पड़ी उदास/ पत्तों पर जल के फव्वारे / मगर जड़े हैं प्यासी / दीमक जैसी चाट रही है/ मन को एक उदासी/ बिना जड़ों तक पोषण पहुँचे/ होगा कहाँ विकास।''
(जिद्दी घास)

''बापू के आगे नत हो बस / फोटो खिंचवाते । बापू के चश्मे से हम सब/ देख नहीं पाते। बापू ऐसा ब्रांड बने जो / बापू के प्रतिकूल/ चौराहों पर बापू की प्रतिमाएँ रोती हैं/ नंगे नर्तन की प्रतिदिन/ घटनाएँ होती हैं/ सत्य, अहिंसा, धर्म, न्याय सब फाँक रहे हैं धूल।'' (बापू)

'पत्तों पर जल के फव्वारे, मगर जड़े हैं प्यासी।' 'जिद्दी घास' शीर्षक गीत में गरिमा भी सामाजिक विषमता पर चोट करते हुए अपनी संवेदनशील दृष्टि को केंद्रित करती है। आजादी के पचहत्तर वर्ष बाद भी आम आदमी का जीवन पेंडुलम की तरह है। आखिर शास्त्री ने नारा क्यों दिया था–'जय जवान जय किसान।' आज किसान 'बेचारा' होकर जी रहा है। सबको जीने के लिए रोटी चाहिए। किसी ने नहीं सोचा कि रोटी कौन दे रहा
है? रोटी देने वाले की स्थिति क्या है? कलम के जादूगर रामवृक्ष बेनीपुरी 'गेहूँ और गुलाब'–दोनों को आवश्यक मानते हैं। पेट और मन–दोनों की तृप्ति आवश्यक है। याद आ रहे हैं आचार्य जानकी
वल्लभशास्त्री–''गई काटने गेहूँ अम्मा/ बाप गया बेगारी में है/ खा अफीम घर के कोने में/ बच्चा पड़ा खुमारी में है।''

गरिमा जी राजनीतिक विषमता से भी मुठभेड़ करती हैं। सत्य–अहिंसा का मार्ग बदलता जा रहा है। बाजारवाद और उपभोक्तावाद ने कुछ भी नहीं छोड़ा है। इन दोनों के आगे सब कुछ गौण हो गया है। गाँधी के आदर्श बौने होते जा रहे हैं। साम्प्रदायिकता एवं सामाजिक विखण्डन के सहारे सत्ता पर बैठे लोग हर दिन नये–नये 'नारे' उछालते रहते हैं। शास्त्री जी की प्रसिद्ध पंक्ति आज भी प्रासंगिक है–''कुपथ–कुपथ रथ दौड़ाता जो, पथ–निर्देशक वह है/ लाज लजाती जिसकी कृति से, कृति उपदेशक वह है।'' गरिमा जी की संवेदना मनगढंत नहीं है, जो देख रही हैं, वही लिख रही हैं। स्वानुभूत यथार्थ के गीत भीड़ से हटकर होते हैं। 'कोशिशों के पुल' संग्रह भीड़ का अपवाद है–

''हम अपने कंफर्ट ज़ोन को / त्यागें कैसे/ सीधी पटरी छोड़ वक्र पर भागें कैसे/ छिल जायेंगे घुटने ठोकर / अगर लगी तो/ हमें अभी भावी घावों से/ डर लगता है/ साँचों में ढलने से पहले गलना होगा/ नये रूप में अब तो हमको/ ढलना होगा।''

खंड–खंड पाखंड समय में सीधे–सादे लोगों का चलना मुश्किल है। अपसंस्कृति के दौर में हर तरफ डर कायम है। घर से निकलना तो होगा। इसके लिए नये रूप में ढलना होगा। गरिमा जी समय को भाँप लेती हैं। अंर्तदृष्टि–सम्पन्न गीत कवयित्री हैं। प्रश्नों की शक्ल में चुनौतियाँ उद्धृत करती हैं।

केवल प्रश्न नहीं करतीं, बल्कि उत्तर की तलाश भी करती हैं। यथार्थ को लिखते हुए गीत की कोमलता को बचा लेती है। बहरहाल, साहित्य में विरले ही कवि–गीतकार होंगे, जिसने प्रेम–प्रकृति के बारे में न लिखा हो। प्रेम स्वकीया हो या परकीया, गरिमा जी के संग्रह में हम पाते हैं कि प्रेम–प्रकृति से उनका रिश्ता, गहरा एवं खास, नयी भंगिमा में है। प्रेम एवं प्रकृति के लगाव के बिना मानवीय जीवन की परिकल्पना अधूरी लगती आलोचक मैनेजर पाण्डेय लिखते हैं–''समकालीन प्रगतिशील ,कविता की विषय–वस्तु के विस्तार को देखकर संतोष होता है, लेकिन प्रकृति प्रेम है एवं सौन्दर्य की कविताओं का अभाव खटकता है।''

गरिमा जी गीतों में स्वकीया प्रेम के अनेक आत्मीय अनुषंग के चित्र उकेरती हैं– ''दबे–दबे ही डायरियों में/ सूख गये हैं फूल/ अलग–अलग हो गयी पंखड़ी/ शब्दों पर भी धूल/ टूट गये हैं तार पुराने/ सरगम भूली राह/ अपने ही गम सहलाते हैं/ नहीं किसी की चाह।'' (पुराने चित्र)

''सारे दिन की / थकान मिटाते / तुम ज्यों मेरी चाय/ बातों में/ अक्सर परोसना/ मीठे संग नमकीन / कितनी खुशियाँ / भर देते हैं/ फ्लैशबैक के सीन / मुस्कानों का / तुम बन जाते/ हो अक्सर पर्याय।'' (तुम ज्यों मेरी चाय)

गरिमा जी का घर–संसार ही प्रेम की दुनिया है। नहीं किसी की चाह है। अपनों को देखते ही दिनभर की थकान उतर जाती है। गरिमा जी खट्टे–मीठे अनुभवों को प्रतीक की भाषा के कहकर गीत को जीवंत बना देती है शब्दों की मिठास से प्रेमगीत नहीं लिखा जा सकता है। संवेदना एवं प्रेम एक–दूसरे का पूरक होता है। जहाँ भी संवेदना जाग्रत हो, वही सच्चा प्रेम है। 'सोना और गिल्लू' निबंध सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हो सकता है। झूठा प्रेम रेत की दीवार की तरह होता है। रीतिमुक्त धारा के सिरमौर कवि घनानंद कहते हैं–''अति सूधों स्नेह के मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं...।'' गरिमा जी का प्रेम शाश्वत है।

गरिमा जी को प्रकृति से भी लगाव है। अपने संग्रह में प्रकृति–सौन्दर्य उद्घाटित किया है। उनके रचना–संसार में प्रकृति के मनमोहक चित्र सजे हैं–''उड़ते–उड़ते पंछी/ कितनी दूर निकल आया/ नदियों, पनघट/ पगडंडी, चौपालें छूट गयीं। अमिया, पीपल, बरगद की वो डालें छूट गयीं/ गर्मी, सर्दी, वर्षा / पतझड़, वो बसंत के दिन / ज्वार, बाजरा, गेहूँ की वो बातें छूट गयीं/ सिर्फ धूप ही/ धूप मिल रही/ नहीं कहीं छाया।''

नित नयी उड़ान भरनेवाला पंछी स्थायी हो गया है। गरिमा जी, 'मैं नीर भरी दुख की बदली' लिखने वाली महादेवी नहीं है। महादेवी जीवन का रहस्य बादल से कहती हैं। गरिमा जी अपनी तुलना उड़ते पंछी से करती हैं। पंछी का आकाश से स्थायी संबंध नहीं रहा। कवयित्री गरिमा जी अतीत को याद कर रही हैं। पंछी और गरिमा जी की जीवनावयि साम्य है। पंछी प्रतीक के रूप में है, जिसके साथ गरिमा जी ने तादात्म्य स्थापित किया है–''धरती ही जीवन के/ किस्सों में गढ़ती है/ सूने नभ को ये जीवंत/ किया करती है/ वरना नभ में विकल हवाएँ ही बहती हैं/ कौन तुम्हारे भेजे तेज / ताप को सहता / कौन तुम्हारे आँसू को/ पी–पीकर रहता/ कोप–बिजलियों हम पर / रोज गिरा करती हैं।''

गरिमा जी अभिधा से शुरू करती हैं, व्यंजना में अंत करती है। स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श अधिकांश गीतकारों का विषय वर्तमान सदी में है। जो शोर मचाकर लिखते रहते हैं। नवगीत मूलतः यथार्थ लिखने को लिखने के लिए जाना जाता है। गरिमा जी यथार्थ को रहस्य में बदलने की कला जानती हैं। 'हम तो धरती है' शीर्षक नवगीत मुख्यतः इसी आशय का द्योतक है। स्त्री–विमर्श की ओर यह नवगीत है। अंत 'करुणा' से होता है–'कोप–बिजलियाँ हम पर रोज गिरा करती हैं।' सरल भाषा में संश्लिष्ट कहना कम गीतकारों के लिए संभव होता है। गरिमा जी जो कुछ कहती हैं, इसकी ख़ास वजह है–कथ्य वस्तु का उनकी संवेदना से एकाकार हो जाना।

समीक्षित पुस्तकः 'कोशिशों के पुल' पृष्ठः 143, मूल्य : 249, प्रकाशकः श्वेतवर्णा प्रकाशन, नई दिल्ली

कविता :

भोला प्रसाद मंडल 'भ्रमर' भागलपुर
मो. 6201147409

द्युत–क्रीडा

अत्याधुनिक नहीं वरन्
प्राचीनतम खेल द्युत–क्रीडा
इतिहास प्रसिद्ध खेल कौरव–
पाण्डव बीच द्युत–क्रीडा

है नहीं यह कोई
बिल्कुल साधारण क्रीडा
व्यापा जनसाधारण में
असाधारण खेल द्युत–क्रीडा

काटता मन–मस्तिष्क कोमल
तंतुओं को द्युत–क्रीडा
देता जनसाधारण को
असह्य पीड़ा द्युत–क्रीडा

था खेला जीत खातिर जुआ
पर गया हार द्युत–क्रीडा
बढ़ाया आखिर घोर–निराश
हार–पे–हार द्युत–क्रीडा

खेलों में खेल एक खेल
का नाम द्युत–क्रीडा
सबसे निम्न कोटि
का खेल द्युत–क्रीडा

निकाला दिवाली में दीवाला
जुआरी का द्युत–क्रीडा
खेलेंगे नहीं अब कभी
ताउम्र जिंदगी में द्युत–क्रीडा

जाता खेला शहर–शहर
गाँव–गाँव द्युत–क्रीडा
मानवता व नैतिकता
का, घोर दुश्मन द्युत–क्रीडा

सच पूछो तो जुआ क्रीडा
नहीं, वरन जहरीला कीड़ा
बढ़ाते काट–काटकर
हमारी मानसिक पीड़ा

प्रत्येक प्रकाश पर्व पे
सजता खूब द्युत–क्रीडा
सका न रोक आज तलक
शासन–प्रशासन द्युत–क्रीडा

देखें इसकी सर्वव्यापकता को
गरीब–अमीर सब खेलते द्युत–क्रीडा
मना करे कौन किसको
ऐसा प्रभावकारी खेल द्युत–क्रीडा।

कविता

शैलेन्द्र कुमार चतुर्वेदी,
चौबान मुहल्ला,
जिला फिरोजाबाद, उत्तरप्रदेश

आपॅरेशन सिन्दूर

गगन पुकारे धरती बोले
जय–जय भारत वीरों की
ऑपरेशन सिन्दूर सफल रहा
गाथा यह रणधीरों की
व्योमिंग, सोफिया मंत्री संतरी
सबने मिलकर अनुसंधान किया
हर अड्डों को चिह्नित करके
चुनचुन कर उनका
काम तमाम किया
खंदरों में छिपे आतंकी
कोई भी ना छूट सका
वीर जवानों को आदेश मिलते ही
कोई जीवित ना बच सका
संदिग्ध संगठनों के आतंकियों को
मौत की नींद सुला दिया
कायर निर्दय घोर अधम
अपनी जान ना बचा सके
मिट्टी में सब मिला दिये
ऐसा सबक बताया उनको
औकात में रहना सीखा दिया

समीक्षा

'बख्तियारपुर'

(कविता में स्मृति संवेदना और समय की आत्मगाथा)

कैलाश केशरी
बेटियाँ लेडीज कॉर्नर, धर्मस्थान रोड,
दुमका, (झारखंड),
मोबाइल–9470105764

विनय सौरभ समकालीन हिंदी कविता के उन विरल स्वरों में से एक हैं, जिनकी संवेदना अपने समय से संवाद करती है; लेकिन अपनी जड़ों से अलग नहीं होती। 'बख्तियारपुर' उनका पहला कविता संग्रह है, किंतु यह संग्रह किसी नवोदित कवि की आरंभिक रचनाओं का संकलन नहीं है, बल्कि यह दशकों की अनुभूतियों, स्मृतियों और जीवन के गहन पर्यवेक्षण का फलित रूप है। यह संग्रह लोक–संस्कृति, संबंधों, अतीत की महक और आधुनिकता की विसंगतियों को बड़ी ही सहजता से पिरोता है।

गाँव और कस्बाई जीवन की जड़ें उनके अनुभव–संसार में गहराई तक फैली है। वे पेशे से पत्रकार रह चुके हैं और वर्तमान में झारखंड सरकार के सहकारिता विभाग में कार्यरत हैं, किन्तु उनका असली परिचय एक सजग कवि, संवेदनशील लेखक और गहरी दृष्टि वाले साहित्यकार के रूप में है। 'बख्तियारपुर' संग्रह उनकी वर्षों की साधना का परिणाम है, जिसमें स्मृति, स्थानीयता और मानवीय रिश्तों की महीन बुनावट दिखाई देती है।

'बख्तियारपुर' में संकलित कविताएँ किसी विशेष शैली में बाँधने की अपेक्षा पाठकों को एक अनुभव–यात्रा पर ले जाती हैं। संग्रह की शीर्षक कविता 'बख्तियारपुर' एक साधारण स्टेशन को एक भावनात्मक स्थल में बदल देती है, जहाँ पिता की अधूरी नींद, बेटे की उलझन और यात्रा का अपराधबोध सब कुछ अतीत की परछाइयों में घुँघला–सा बहता चला जाता है। यह कविता एक ऐसे भाव–बिंदु पर पाठक को लाकर छोड़ती है, जहाँ वह स्वयं भी अपनी स्मृतियों के किसी भूले हुए स्टेशन पर उतरने को विवश हो जाता है।

'बख्तियारपुर' केवल एक कविता संग्रह नहीं है, यह स्मृति में दर्ज होता हुआ एक जीवनानुभव है। विनय सौरभ की यह काव्य–पुस्तक समकालीन हिंदी कविता की उस धारा से आती है, जहाँ सादगी, संवेदना और स्मृति की अंतर्ध्वनि एक साथ गूंजती है। यह संग्रह न तो किसी वैचारिक आंदोलन की घोषणा करता है, न किसी बौद्धिक जिरह का दावा; बल्कि यह एक गहरी मानवीयता की सतह से फूटती हुई कविता का संकलन है, जिसमें हम न केवल कवि की आत्मा को, बल्कि अपने समय, अपने गाँव, अपने संबंधों और अपनी विस्मृत होती चेतनाओं को भी देखते हैं।

संग्रह का शीर्षक 'बख्तियारपुर' अपने आपमें स्मृति का प्रतीक बन जाता है। यह कोई नगर या स्थान मात्र नहीं है, बल्कि एक ऐसा भावक्षेत्र है, जहाँ पिता की नींद, बेटे की चिंता और ट्रेन की खिड़की से गुजरता हुआ एक अपरिचित स्टेशन सब कुछ एक कविता में बदल जाता है। शीर्षक कविता में कवि लिखते हैं–

''बख्तियारपुर स्टेशन आया नहीं पिता की नींद खुल गई।''

यह दृश्य सिर्फ एक गाड़ी के ठहराव का नहीं, बल्कि जीवन के उस पड़ाव का संकेत है, जहाँ स्मृति और वर्तमान की रेलगाड़ी आपस में उलझ जाती है। यह पंक्ति एक साधारण यथार्थ को असाधारण करुणा में बदल देती है। विनय सौरभ की कविता वहाँ समाप्त नहीं होती, जहाँ पंक्ति समाप्त होती है, वह पाठक के भीतर लंबे समय तक बनी रहती है।

इस संग्रह की सबसे बड़ी शक्ति है–'स्मृति की कविता'; लेकिन यह स्मृति किसी आत्ममुग्ध कवि की आत्मकेंद्रित भाषा नहीं है। यह एक सामाजिक स्मृति है, लोक और परिजन की साझा स्मृति। 'वे संबंधी' कविता में कवि लिखते हैं–

''वे संबंधी अब भी हैं, जो बैलगाड़ी में चिट्ठियाँ लेकर आते थे और शहर लौटने पर मुझसे पूछते, वहाँ का पानी कैसा है?''

यह केवल अतीत का चित्रण नहीं है, बल्कि आज के बनते–बिगड़ते सामाजिक ताने–बाने पर भी सूक्ष्म टिप्पणी है। इसी क्रम में 'खान बहुरूपिया', 'पुराना डाकिया', 'पिता की डायरी' जैसी कविताएँ उस स्मृति–संसार का पुनर्निर्माण करती हैं, जो आधुनिकता की दौड़ में विलीन हो चुका है। वे पात्र अब केवल स्मृति में जीवित हैं और कविता के जरिए उन्हें साहित्यिक स्मारक मिल जाता है।

इन कविताओं की भाषा अत्यंत स्वाभाविक और संवादधर्मी है। कोई आडंबर नहीं, कोई उलझाव नहीं; बल्कि एक ऐसी स्पष्टता जो भाषा को पारदर्शी बनाती है। जैसे कविता 'पुराना डाकिया' में लिखा गया है–

''वह अब भी आता है हालाँकि अब कोई चिट्ठी नहीं आती।''

यह साधारण–सी पंक्ति उस पूरे युग का अंतस स्पर्श करती है, जिसमें संवाद अब डिजिटल हो गया है और मानव संबंधों में मशीनी ठंडक आ गई है। विनय सौरभ की भाषा में कोई घोषणात्मक क्रांति नहीं है; लेकिन जो कुछ है, वह उससे कहीं ज्यादा मूल्यवान है, वह है मनुष्य की गरिमा की चुपचाप रक्षा।

'पतंग भी उसी की है' कविता अपने समय की त्रासदी को इतने मौन और शालीन ढंग से कहती है कि पाठक देर तक उस मौन में रुका रहना चाहता है। कविता की मार्मिक पंक्ति है–

''में उस घर की छत पर पतंग उड़ा रहा हूँ जो बिक चुका है।''

यह पंक्ति केवल किसी संपत्ति के हस्तांतरण की सूचना नहीं है, बल्कि वर्तमान के उस खालीपन की सूचना है, जिसमें हम अब बसते हैं; लेकिन जिसका कोई ठिकाना नहीं बचा। यह एक सम्पूर्ण पीढ़ी की विस्थापन–पीड़ा का प्रतीक बन जाती है।

विनय सौरभ की काव्य–दृष्टि में जो विशेष बात ध्यान खींचती है, वह है लोक के प्रति उनका गहरा अनुराग। यह अनुराग न तो किसी रूमानी कल्पना से उपजा है और न ही किसी बाहरी पर्यवेक्षण से, यह उनके अपने जीवन में अनुभव की गई सच्चाई है। 'खान बहुरूपिया' कविता में वह लिखते हैं–

''उसका रंग उतर चुका है पर उसकी चाल में अब भी भीड़ जुट जाती है।''

यह पंक्ति बहुरूपिये के माध्यम से लोक के विलुप्त होते जीवनशैली की गाथा कह जाती है। इसी तरह 'जिल्दसाज़' का जिक्र करते हुए वह एक विलुप्त होते पेशे को सजीव करते हैं।

विनय जी की कविताओं में आधुनिकता का आलोचनात्मक स्वरूप भी स्पष्ट दिखाई देता है; लेकिन यह आलोचना किसी औपचारिक विमर्श की तरह नहीं आती। यह आती है एक बेटे की चिंता में, एक पिता की डायरी में, एक बूढ़ी नदी की उदासी में और सबसे अधिक मेलों की बदलती प्रकृति में। कविता 'मेला' में कवि लिखते हैं–

''मेला तो लगता है पर श्रद्धा नहीं, शोर है।''

यह पंक्ति उनके लेखन की समकालीन सामाजिक चेतना को व्यक्त करती है। यह कविता से समाजशास्त्र नहीं रचती, बल्कि समाज को

कविता के माध्यम से समझने का प्रयास करती है।

'बख्तियारपुर' को पढ़ते हुए केदारनाथ सिंह, विजय देव नारायण साही और रघुवीर सहाय की परंपरा की स्मृति ताजा हो जाती है–जहाँ कविता जनपदीय होते हुए भी निजी होती है, और निजी होते हुए भी सार्वजनीन। यही विनय सौरभ की ताकत है कि वे कविता को अपने गाँव से उठाते हैं; लेकिन उसमें ऐसा जीवन घोल देते हैं कि वह किसी भी पाठक का अनुभव बन जाती है।

'बख्तियारपुर' एक साधारण जीवन की असाधारण काव्य– प्रस्तुति है। इसमें कोई चमत्कार नहीं है, पर एक गहरी सच्चाई है और यही सच्चाई कविता की असली ताकत होती है। विनय सौरभ की यह पुस्तक हमारे समय में कविता की उस दिशा की पुष्टि करती है, जो प्रदर्शन से नहीं, बल्कि संवेदना से साहित्य बनाती है। यह संग्रह समकालीन कविता में एक मील का पत्थर नहीं, बल्कि एक स्मृति–स्तंभ है, जहाँ हम सब अपने भीतर के किसी भूले हुए बख्तियारपुर से फिर मिल सकते हैं।

कविताएं

कुमारी किरण
रा.आ.म.वि. केंद्रीय कारा क्षेत्र,
भागलपुर
9470628826

क्या मेरा कोई मोल नहीं?

क्या मेरा कोई मोल नहीं?
सुबह की पहली किरण, तारों की शीतल छाया हूँ
आँगन की चिड़िया, ईश्वर का वरदान हूँ
माँ की जान, पिता का गुमान हूँ
फिर भी बहिष्कार करती है दुनिया
क्या मेरा कोई मोल नहीं?
लक्ष्मी पुकारी जाती हूँ, पर पैसों से तोली जाती हूँ
दहेज के कारण आज भी आग में जलती हूँ
मैं नन्हीं–सी गुड़िया हूँ, व्यापार नहीं
क्या मेरा कोई मोल नहीं?
जिस घर में पली–बढ़ी, उस घर–द्वार से
विदा कर दी जाती हूँ
उस आँगन से भी मेरा खो गया अधिकार
क्या मेरा कोई मोल नहीं
बनकर दुल्हन जब आई, समेटे खुशियों की झोली
सौभाग्यशाली का आशीर्वाद मिला
सच में मैं थी भोली
रिस्तों की गहराई में डूबी, माँ का आँचल छोड़कर
पर आज अभागन ठहराते हैं
क्या मेरा कोई मोल नहीं
दो घरों को जोड़कर, एक परिवार बनाती हूँ
सबों का ख्याल रखकर, घर को गुलजार कराती हूँ
बचपन से मैंने त्याग, समर्पण का पाठ पढा
फिर भी न कोई स्थान रहा
क्या मेरा कोई मोल नहीं
मेरा भी एक सपना था
पढ़कर डॉक्टर बनना था
पिता का मान बढ़ाना था
पर मासूम गुड़िया कहनेवाले ही अस्मत को लुटा था
क्या मेरा कोई मोल नहीं
बेटी हूँ कई रूप में
बहन, पत्नी, माँ के रूप में
मत करो मेरा अपमान
मैं हूँ, तो है जहान
घर की रौनक कहने वाले
क्यों बेटियों से डरते हैं
क्या मेरा कोइ मोल नहीं?

हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ

2. हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ
हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ।
अलबेली हूँ, मस्तानी हूँ
सहज सुन्दर–सी छबिली
सबके मन को भाने वाली हूँ
हाँ, मैं हिंदी हूँ,मैं हिंदी हूँ
भाषा का ज्ञान हूँ
राष्ट्र की शान हूँ
देश का अभिमान हूँ
भाषाविद् का सम्मान हूँ
हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ।
माँ की ममता हूँ
पिता की छाया हूँ
बहनों की काया हूँ
जन–जन की माया हूँ
हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ
वीर शहीदों की भूमि हूँ मैं
सौंधी, सुगंध, मीठी–सी भाषा हूँ मैं
हर भारतीय की पहचान हूँ मैं
हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ
मैं देश की एकता हूँ, अखंडता हूँ
संस्कृति और संस्कार हूँ
हर भारतीय का सम्मान हूँ
हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ
मैं भाषा का गर्व हूँ
14 सितंबर का पर्व हूँ
अरे, कश्मीर से कन्याकुमारी तक क्या
विदेशों में भी पहचान हूँ
हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ
मुश्किल सफ़र में भी मैं
शेर–शायरियों से लोगों के
हृदय में उमंग भरा करती हूँ
हाँ, मैं हिंदी हूँ, मैं हिंदी हूँ।

व्यंग्य आलेख

बरखा रानी, तुम क्यूँ आती हो!

डॉ. प्रदीप उपाध्याय

बरखा रानी आखिर हर साल तुम क्यूँ आती हो। कहीं ठहर क्यूँ नहीं जाती। तुम्हारी अपेक्षा फिर यह हो सकती है कि में भी तुमसे यही कहूँ कि बरखा रानी जमकर बरसों, मेरा दिलबर जा न पाए, झूमकर बरसों, लेकिन में ऐसा नहीं कहूँगा; क्योंकि तुम्हारे जमकर बरसने से सड़कें झील बन जाती है और तब सड़कों के गड्ढे कब भँवर बनकर इंसान को लील जाएँ, कोई कह नहीं सकता। अब इश्क का भूत उतर चुका है, दिलबर को भी घर जाने की चिंता सता रही है। झील बन चुकी सड़कों पर जब स्कूटर, कार चलने से इंकार करते हैं, तो फिर अपनी क्या बिसात कि दिलबर के साथ सड़क, पार्क में झूमे गाएँ। चलो छोड़ो तुम तो यह बताओ कि हर साल आकर सड़क पूल–पुलिया, सरकारी भवनों की पोल क्यों खोल जाती हो। बिटुमेन सड़क हो या कांक्रीट सड़क, तुम सबको नंगा करने पर ही तुली रहती हो। वैसे यह सही है कि जिनके कपड़े उतरते हैं, वे भी शर्मसार नहीं होते; क्योंकि जनता की माँग पर अगले वर्ष फिर उन्हें डामर, सीमेंट पीने और गिट्टी–पत्थर खाने का भरपूर मौका मिलता है।

फिर भी बरखा रानी, तुम एक–दो बरस का अवकाश ले लिया करो; लेकिन कहीं ऐसा तो नहीं कि ठेकेदार, इंजीनियर, अफसर और नेताओं का कॉकस मिलकर इंद्रदेव को रिझाने इस धरती से मेनका–उर्वशी सरीखी अप्सराओं को भेज देते हों और तब मजबूरी में इंद्रदेव के आदेश पर तुम्हें इस धरा पर तबाही मचाने आना पड़ता हो। सच–सच बताना बरखा रानी। विकास के लिए विनाश की सुपारी आखिर कौन देता है!

बरखा रानी! तुम हर साल क्यों आती हो? क्या तुम्हें कभी यह ख्याल नहीं आता कि लोग तुम्हारे आने से परेशान हो जाते हैं? ठीक है, कुछ कवि–हृदय लोग तुम्हें देखकर झूमते हैं, गीत गाते हैं, प्रेम–पत्र लिख डालते हैं; लेकिन जरा इधर–उधर उस गड्ढेवाली सड़क पर भी तो नजर डालो, जहाँ तुम्हारे आते ही
छोटी–सी बरसात में ही सड़क तालाब, झील और गड्ढा स्वरूप को प्राप्त कर लेती है।

तुम्हें क्या यह लगता है कि तुम्हारे स्वागत में लोग छतरियाँ खरीदते हैं, रेनकोट पहनते हैं, जूते–चप्पल की बलि चढ़ाते हैं! हाँ, यह सोच सकती हो कि शासन–प्रशासन पलक–पावड़े बिछाकर तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करते हैं और स्वागत की तैयारियाँ पहले से करते हैं। विगत वर्ष जिन सड़कों पर डामर चढ़ाया गया था, वह तुम्हें देखते ही शरमा जाता है और अपनी असली औकात दिखा देता है।

बरखा रानी! मानना पड़ेगा, तुम्हारे पास एक्स–रे जैसी नजर है। कहीं बिटुमेन की परत थोड़ी भी कमजोर हो, तुम तुरंत पकड़ लेती हो। कांक्रीट सड़क में सीमेंट तुम्हारा लोहा मानकर चुपचाप खिसक लेती है।

सच कहूँ तो हमसे ज्यादा उन ठेकेदारों, इंजीनियरों, अफसरों, नेताओं को तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा रहती है। जिनकी रोजी–रोटी तुम्हारी बरसात पर टिकी हुई है। वे सालभर की कमाई का इंतजार करते हैं। सड़क बनाने के बाद उन्हें पता है कि बरखा रानी आकर असली रिपोर्ट कार्ड बनाएँगी। वैसे उन्हें डर भी कहाँ? अगले साल फिर टेंडर होगा, फिर सड़क टूटेगी, फिर पैसा आएगा, फिर कमीशन बँटेगा।

जनता भले ही गड्ढों में गाड़ी का बैलेंस खोकर गिर जाए, बच्चे स्कूल न पहुँच पाए, एंबुलेंस रास्ते में फँस जाए; लेकिन बरखा के बाद ठेकेदारों और अफसरों के चेहरे पर वही चमक लौट आती है। तुम न आतीं तो यह आर्थिक चक्र ठप हो जाता।

बरखा रानी! तुम्हारे आने पर सबसे ज्यादा फायदा नेताओं को होता है। चुनाव के समय वे हर गड्ढे में जाकर वादा करते हैं–''देखिए, इस सड़क को हम शीशे की तरह चमका देंगे।'' जनता ताली बजाती है, वोट डाल देती है। फिर बरखा रानी तुम आती हो और सारे वादे धुल जाते हैं। नेताओं को फिर से जनता के सामने रूदाली का मौका मिल जाता है–''देखिए, यह तो प्राकृतिक आपदा है, हमारी क्या गलती!''

तुम्हें देखकर अक्सर लगता है कि कहीं ऊपर कोई गुप्त समझौता तो नहीं हो रहा। इंद्रदेव और धरती के इन ठेकेदारों की कोई मीटिंग होती होगी, जिसमें निश्चय–अनिश्चय के साथ होता होगा–''भाई, इस बार उतनी ही बरसात भेजना कि सड़कें जरूर धुल जाएँ; लेकिन फसलें इतनी भी न बिगड़ें कि किसान आत्महत्या कर बैठे। जनता त्रस्त हो, पर ठेकेदार मस्त रहे।''

कभी–कभी तो शक होता है कि कहीं यह सब विकास के नाम पर विनाश का प्लान तो नहीं? आम जन के हिस्से यह सोचते रह जाना ही है कि सड़क कब बनेगी, नाली कब सुधरेगी, पुल कब बनेगा, पुलिया का कब उद्धार होगा; लेकिन हकीकत यह है कि ये सब बनते हैं तुम्हारे भरोसे। तुम आओगी, सब बिगाड़ोगी, फिर ठीक कराने का टेंडर पास होगा।

बरखा रानी! अब तुम नायिका से ज्यादा 'फिल्मी खलनायिका' लगने लगी हो। पाँच मिनट की बारिश और घंटों का जलभराव। नाले उफन पड़ते हैं, घरों में सीवर का पानी घुस जाता है, लोग कार में बैठकर नाव चलाने का अनुभव लेते हैं। तुम्हारे आने से शहर का प्रशासन हर बार बेकसूर बन जाता है। देखिए जी, इतनी बारिश तो सौ साल में नहीं हुई। यह डायलॉग वे हर साल बोलते हैं और हर साल जनता ताली बजाती है।

बरखा रानी! तुमने देखा होगा कि जबतक तुम नहीं आती, अखबारों में पानी बचाओ, जल–संरक्षण, वर्षा जल संग्रहण जैसी बातें छपती हैं। पर जैसे ही तुम आती हो, सब कुछ धुल जाता है। नालियाँ चोक हो जाती है, तालाबों में गाद भरी रहती है, और जल–संरक्षण का पूरा ज्ञान बहकर सीवर में चला जाता है। तुम्हारा असली काम तो यही है– हमें हमारे पाखंड का आईना दिखाना। हम बड़े गर्व से कहते हैं कि हमने स्मार्ट सिटी बनाई है, डिजिटल इंडिया बना रहे हैं, चाँद और मंगल पर पहुँच रहे हैं और तुम आती हो, तो चंद मिनट की बारिश में ही स्मार्ट सिटी की सारी स्मार्टनेस पानी पानी हो जाती है।

बरखा रानी! हम जानते हैं कि तुम्हें भी यह सब अच्छा नहीं लगता होगा। तुम तो धरती को हरा–भरा करने आती हो, नदियों को भरने आती हो, जीवन का संचार करने आती हो; लेकिन यहाँ तो तुम्हारा नाम सुनते ही कइयों के चेहरे खिल जाते हैं। तुम्हारी हर बूँद उनकी सात पुश्तों को तारने आ जाती है। बरखा रानी, कभी अज्ञातवास पर भी चली जाओ। एक–दो साल न आओ, तो देखो कैसा हाहाकार मचता है। तब शायद आम जन को भी समझ में आए कि बरखा का असली महत्त्व क्या है!

लेकिन अंत में सवाल वही है–विकास के नाम पर विनाश की यह सुपारी आखिर कौन देता है? कौन है वह, जो हर साल तुम्हें इंद्रलोक से भेज देता है? कौन है वह, जो तुम्हारे आने का इंतजार करता है, ताकि टूटे मकानों और टूटी सड़कों पर नयी इबारत लिख सके?

बरखा रानी! हमें तो यही लगता है कि तुम्हारा असली दोष बस इतना है कि तुम सच्चाई उजागर कर देती हो। तुम नहीं आतीं, तो हम ठेकेदारों और नेताओं की पोल कैसे खोल पाते? इसलिए बरखा रानी, आती रहा करो; लेकिन कभी सोचो और समझो भी! आम आदमी का भी ख्याल रखो। कहीं तुम्हारा नाम सुनते ही उसकी साँसें अटकने न लगें।

आलेख

हिंदी ही अनुवाद के लिए आधार भाषा

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्., चंडीगढ़,
मो. 9876301085

अनुवाद की अवधारणा, इसके उद्गम, अर्थ एवं स्वरूप विश्लेषण की बारीक शल्य क्रिया यदि न भी की जाए, तो इतना विश्वासपूर्वक अवश्य कहा जा सकता है कि अपने अविकसित रूप में, इस सृष्टि और मानव रचना के साथ ही अनुवाद का श्रीगणेश हो चुका था, भले ही दो व्यक्तियों के पारस्परिक वैचारिक आदान–प्रदान में अनुवाद ने संकेतों, स्वरों, ध्वनियों और प्राकृतिक रंगों के रूप में अपनी भूमिका निभाई हो, मानव सभ्यता को विकास, चीन में कागज और स्याही के आविष्कार तथा वेस्टमिनिस्टर में प्रथम प्रिंटिंग प्रेस के स्थापित होने से अनुवाद अपनी सही प्रक्रिया में आने लग गया था। ताज्जुब नहीं कि लिखित भाषा से पहले मौखिक अनुवाद की परंपरा रही है और आजकल के दुभाषियों की तरह प्राचीन काल में भी द्विभाषिक अभिव्यक्ति के मध्यस्थ हुआ करते थे, जिसकी पुष्टि पॉल एंजिल, वाईक्लिफ और जॉन स्मिथ ने अनुवाद संबंधी अपनी टिप्पणियों में स्पष्ट रूप से की है। यहाँ तक कि मैक्समूलर ने ऋग्वेद का अनुवाद करते समय तत्कालीन युग में अनुवाद के अस्तित्व को खोज निकाला था, जिसका उल्लेख अन्यत्र एक पाद टिप्पणी में किया गया है। कुछ भी हो, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अनुवाद का अभिप्राय इत्र से भरी शीशी को दूसरी खाली शीशी में इस संतुलन एवं कलात्मकता से उँड़ेलना कि सुगंधित द्रव्य की एक बूँद भी नीचे न गिरे। अनुवादक भी मूल भाषा के भावों एवं विचारों रूपी यात्रियों को अपनी लक्ष्य भाषा रूपी नाव में समाहित कर दूसरे किनारे सही सलामत पहुँचा दे।

अनुवाद की संभाव्यता एवं निष्ठा को लेकर विश्व में दो प्रकार की विचारधाराएँ सक्रिय हैं–विकासवादी विचारधारा और ठहरववादी विचारधारा। ठहरववादी विचारकों, विशेषकर फ्रांस के कवि एवं आलोचक का मानना है कि अनुवाद हो ही नहीं सकता, यह असंभव कार्य है। कविता का अनुवाद करना, कविता की हत्या करना है। कवि की मूल संवेदना, कल्पना, अभिव्यंजना, उसके भावों और विचारों को अनुवादक छू तक नहीं सकता। तभी तो एक फ्रेंच कवि ने कहा था–''अनुवाद एक स्त्री की तरह है। यदि वह सुन्दर है तो वफादार नहीं है और यदि वफादार है तो सुन्दर नहीं है।'' जॉन क्रिस्टोफर अनुवाद को किसी प्रिंटदार कपड़े का पृष्ठभाग मानते हैं, तो विक्टर ह्यूगो अनुवाद को मूल भाषा के साथ जबर्दस्ती क्रिया ठहराते हैं। यहाँ तक कि ठहरववादियों का एक बड़ा वर्ग ऐसा भी है, जो अनुवाद को विधा मानने के लिए कतई तैयार नहीं है। लेकिन अनुवाद संबंधी इस नकारात्मक दृष्टि के संदर्भ में हमारा मानना है कि अनुवाद संभव है, भले ही यह एक श्रमसाध्य एवं धैर्य की प्रक्रिया है। विश्व साहित्य, ज्ञान–विज्ञान, कला, धर्म, दर्शन आदि के क्षेत्र में एक से एक बढ़कर अनुवाद हुए हैं। इस संदर्भ में बाइबिल, श्रीमद्भगवतगीता, अभिज्ञान शाकुन्तलम, उमर खैयाम की रुबाइयों, गीतांजलि, इब्सन और शेक्सपियर के नाटक आदि के अन्यान्य भाषाओं में उत्कृष्ट अनुवाद हुए हैं, जिससे ज्ञान एवं प्रेरणा अर्जित कर धर्म, दर्शन, साहित्य और वादों के कई किले निर्मित हुए हैं।

विकासवादी विचारधारा के लोग अनुवाद के प्रबल समर्थक हैं और इसे साहित्य की अन्य विधाओं की तरह एक विधा के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं। वे यहाँ तक मानते हैं कि अनुवाद प्रक्रिया के रुकने का अर्थ होगा ज्ञान–विज्ञान के रथ के पहियों का रुक जाना। इसमें मतैक्य है कि अनुवाद अनुभवी, प्रतिभासंपन्न और विलक्षण व्यक्ति का कार्य है। एक सामर्थ्यवान अनुवादक अपनी दक्षता, योग्यता एवं कुशलता से दो भाषाओं की दूरी तय करता है। कभी–कभी तो अनुवाद मूल से ज्यादा प्रभावोत्पादक और कलात्मक हो जाता है, जिसके कतिपय उदाहरण ऊपर दिये जा चुके हैं। सफल अनुवादक भी वही होता है, जो अपनी दृष्टि भावों पर रखता है। उसे लक्ष्य भाषा और स्रोत भाषा के मध्य सर्कस में रस्सी पर चलनेवाले खिलाड़ी की तरह संतुलन बनाए रखना पड़ता है।

अनुवाद के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण तथ्य ध्यान में रखने योग्य यह है कि भाषा समाज सापेक्ष है और समाज के विकास के साथ–साथ भाषा का भी विकास होता है तथा शब्दों के अर्थ निश्चित होते हैं। इसका प्रभाव एवं परिणाम अनिवार्यतः वाक्य रचना पर भी पड़ता है। यह भी कि शब्द जन्म लेते हैं, जवान होते हैं, वृद्धावस्था में पहुँचते हैं और प्रयोग मंच से अदृश्य भी हो जाते हैं। किंग एल्फर्ड के समय में 'kirk' शब्द 'गिरिजाघर' के अर्थ प्रचलन के उत्कर्ष पर था, लेकिन आज इसकी जगह 'church' और 'cathedral' ने ले ली है। अंग्रेजी कवि, आलोचक और नाटककार टी. एस. इलियट ने अपने नाटक 'Murder in the Cathedral' में समय की नजाकत और संदर्भ उपादेयता को ध्यान में रखते हुए 'Cathedral' शब्द को ही तरजीह दी थी। सुकरात का 'Know Thyself' कब और क्यों 'Know Yourself' (स्वयं को जानो) में परिवर्तित हो गया, लोगों को पता ही नहीं चला। यद्यपि सुकरात से बहुत पहले यही बात श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कही थी।

कहा जा चुका है कि अनुवाद गहरी समझ, निर्मल विवेक, सहनशीलता और श्रमशीलता का कार्य है, कोई कार्बन कॉपी अभ्यास नहीं। एक भाषा में अभिव्यक्त विचार को दूसरी भाषा में हू–ब–हू अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है। हिन्दी में 'क्या बज रहा है?' का अनुवाद 'ूींज पे तपदहपदह' नहीं हो सकता। इसे अंग्रेजी में 'ींज पे जपउमद', फ्रेंच में 'व्समस जमउच सिजश पस?' और रूसी में 'स्कोल्को प्रेमेनि?' ही कहा जाएगा। जाहिर है कि इन चारों भाषाओं में समय की जिज्ञासा की अभिव्यक्ति भिन्न–भिन्न है। राजेन्द्र सिंह बेदी के उपन्यास 'इक चादर मैली–सी' में पंजाबी लाड़–प्यार की अभिव्यक्ति 'मेरा चन', 'मेरा पुत्तर' सूक्ति के रूप में हुई है। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'डल डववद', 'डलै वद' न केवल सांस्कृतिक संदर्भ से कट जाएगा, बल्कि बेतुका और भौंडा लगेगा। इसी संदर्भ में वर्डस्वर्थ ने 'टिन्टर्न एवं' शीर्षक लंबी कविता में अपनी बहन डॉ. रोधी वर्डस्वर्थ को 'जेवन डल क्मंतमेज तिपमदकए डल क्मंतए क्मंत तिपमदक' शब्दों से संबोधित किया है; लेकिन भारतीय संदर्भ में बहन के प्रति भाई के स्नेह की आभा निश्चित रूप से भिन्न किस्म की है।

विषम भौगोलिक विशिष्टताएँ एवं परिस्थिति विज्ञान परिवर्तन की पराकाष्ठा का भी अनुवाद में समानार्थी शब्दों के चयन में विशेष ध्यान रखना पड़ता है। बाइबिल के कतिपय अनुच्छेदों में अंजीर वृक्ष, नई पत्तियाँ, वर्षा, रेगिस्तान, नदी आदि ऐसे संदर्भगत शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिसके समानार्थी शब्दों को भारतीय संदर्भ में ढूँढ़ पाना आसान कार्य नहीं है। अफ्रीका के एक औसत दर्जे के व्यक्ति के लिए 'हिम' शब्द से तुरंत संबद्धता कायम कर पाना इतना सरल नहीं है। अंग्रेज लोग लगभग सायं 6 बजे 'हाई टी' को प्रारंभिक रात्रि भोज के रूप में लेते हैं; लेकिन यह चाय बिल्कुल नहीं होती। फ्रांस में स्कूल जाने वाला बच्चा 'ली गोटर' दोपहर का भोजन साथ लेकर जाता है। फ्रांसीसी इसी शब्द का प्रयोग 'शाम की चाय' के लिए भी करते हैं। भारतीय 'गुलाब जामुन' में न तो गुलाब है और न ही जामुन। इसी प्रकार 'दाल चीनी' में भी न दाल है और न चीनी ही। इन उदाहरणों को देने का प्रयोजन यह है कि अनुवादक को किसी देश के इतिहास, भूगोल, संस्कृति, वेश–भूषा, खान–पान, वृक्ष, फल, धर्म–दर्शन, यज्ञ, तपस्या, आस्था, जप, पूजा–पाठ, भक्ति, श्रद्धा, श्राद्ध, मुहावरे, ध्वनि, छंद, लय, बिंब, प्रतीक, अलंकार आदि के संदर्भ
प्रयोगों के प्रति बहुत सचेत रहना पड़ेगा।

अनुवाद का कार्य जितना सरल समझा जाता है, उतना सरल नहीं है। स्थूल अर्थों के वाचक शब्दों को लेकर कठिनाई है, तो सूक्ष्म और अमूर्त वाचक शब्दों के अर्थ को लेकर समस्याएँ हैं। ब्रिटिश शासन–काल में अंग्रेजी के समाचार–पत्र में प्रकाशित समाचार 'while travelling by train, a woman gave birth to a 'still child' को उत्तरप्रदेश के एक हिन्दी अखबार ने कुछ इस तरह छापा था, रेलगाड़ी में यात्रा करते समय एक महिला ने शान्त बच्चे को जन्म दिया। जबकि 'till child' का आशय 'मृतक बच्चे' से था।

शेक्सपियर के नाटक 'The Tempest' में आए एक वाक्य 'Her father was Prospero' का एक साहित्यकार अनुवादक ने हिन्दी अनुवाद 'उसका पिता समृद्ध था' कर मारा। जबकि 'Prospero' एक व्यक्ति का नाम है। यदि अनुवादक ने संदर्भ विवेक से काम नहीं लिया, तो 'The Tenth Master* का 'दसवाँ अध्यापक', Freeship to student का 'विद्यार्थियों को मुफ्त जहाज', 'Dream in Marble' का संगमरमर में स्वप्न और 'Area Under Security' का 'सुरक्षा के नीचे क्षेत्र' अनुवाद सटीक अर्थ–संदर्भ से बहुत दूर चला जाएगा। एक अनुभवी एवं विवेकमान अनुवादक इन शब्दों का अनुवाद क्रमशः 'दशम गुरु गोविंद सिंह', 'विद्यार्थियों को निःशुल्कता', 'ताजमहल' और 'सुरक्षा क्षेत्र' ही करेगा। अंग्रेजी कवि P.B. Shelley की कविता 'To A Skylark' की प्रसिद्ध पंक्ति 'Our Sweetest songs are those that tell of saddest thought' और John Keats dh dfork ^Ode on ।
Grecian Um' की पंक्ति 'Heard melodies are sweet but those unheard are sweeter का हिन्दी रूपान्तर तो कोई भी कर सकता है, किन्तु मूल ही संवेदना और सौन्दर्य अनुवाद में ज्यों–का–त्यों बिखेर देना बहुत दूर की बात है।

अतः कहा जा सकता है कि अनुवाद में कठिनाई भाषा की नहीं, उसके प्रेरक तत्त्वों को लेकर होती है, जो अधिक महत्वपूर्ण और अरूपान्तरणीय हैं। प्रेमचंद एवं प्रसाद, निराला और पंत ने एक ही शैली में नहीं लिखा और न ही उनके प्रेरक प्रभाव तत्त्व एक समान थे। यही शैली वैविध्य अमरीकी साहित्यकार थोरो, एमर्सन, विट्मैन और हमिंग्वे में भी देखा जा सकता है। इनकी रचनाएँ भाव, अभिव्यंजना और शैली के स्तर पर भिन्नता लिए हुए हैं। आईने को बिंब बदलने का अधिकार नहीं है। बिंब जैसे रहता है, प्रतिबिंब भी बिल्कुल वैसा ही होना चाहिए। विश्व साहित्य में जो अनुवाद सफल हुए हैं, उनमें शब्द, भाव, विचार, शैली और संदर्भ की रक्षा की गई है। अनूदित ग्रंथों के सर्वेक्षणोपरान्त अंग्रेजी लेखक हिलेयर वेलॉक ने ठीक ही कहा है कि अच्छे अनुवादक उतने ही दुर्लभ होते हैं, जितने अच्छे कवि।

इस सच्चाई से किसी का माथा ठनक सकता है कि अनुवाद में स्थायिता नहीं आ सकती। यदि आज एक अनुवाद अच्छा माना जा रहा है, तो संभव है कि कल उससे भी अच्छा अनुवाद प्रकाश में आ जाए। इस संदर्भ में बाइबिल, रामायण, श्रीमद्भगवद्गीता और शेक्सपियर के कुछेक नाटकों (Othello, Hamlet, King Lear, Macbeth) के अनुवादों की परख पहचान की जा सकती है। होमर, गेटे, टालस्टॉय, शेक्सपियर, कालिदास, सूर, तुलसी और प्रेमचंद कभी पुराने नहीं होंगे। लेकिन उनकी रचनाओं के अनुवादों संबंधी यही बात नहीं कही जा सकती है। कारण यह कि अनुवाद का संबंध भाषा, विषय, शैली, परिवेश, व्यक्ति, समाज, संदर्भ आदि अनेक वस्तुओं से है। यह भी सर्वमान्य तथ्य है कि अनुवाद आज के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक एवं कार्यालयी जीवन का अनिवार्य अंग बन गया है। बिल गेट्स तथा अन्य कंप्यूटर निर्माता कंपनियों ने समय रहते ही अनुवाद की उपयोगिता और आवश्यकता को पहचान लिया है। विभिन्न प्रकार के उपलब्ध द्विभाषिक सॉफ्टवेयर इसी सत्य तथ्य के साक्षी हैं। इस दिशा में कंप्यूटर अनुवाद एक क्रांतिकारी कदम है ही। स्वयं राष्ट्रसंघ में ही अंग्रेजी, फ्रेंच, रूसी, स्पेनी, चीनी, जर्मन आदि भाषाओं में अनवरत अनुवाद कार्य चलता रहता है। गत कुछ वर्षों से वहाँ स्वचालित अनुवाद को बहुत बढ़ावा मिला है।
कहने की जरूरत नहीं कि विश्व के अतिविकसित, विकसित और विकासशील देशों ने अपने यहाँ अनुवाद के लिए एक आधार भाषा निर्धारित की है। मिसाल के तौर पर इंग्लैंड और अमेरिका में अंग्रेजी, जर्मनी में जर्मन, फ्रांस में फ्रेंच, रूस में रूसी, चीन में चीनी, स्पेन में स्पेनिश अनुवाद के लिए आधार भाषाएँ सुनिश्चित की गई हैं। बिना किसी पूर्वाग्रह, प्रतिकूल मानसिकता एवं वैचारिक संकीर्णता के भारत में भी अनुवाद के लिए हिन्दी को आधार भाषा अथवा संयोजक भाषा रखा जा सकता है, जिसके माध्यम से सभी भारतीय भाषाएँ एक–दूसरे के संपर्क में आ सकती हैं। मसलन, तमिल के किसी ग्रंथ का अनुवाद पहले हिन्दी में प्रस्तुत हो जाए, तो उसे हिन्दी से बंगला, तेलगु, कन्नड़, मलयालम, पंजाबी, मराठी, गुजराती में रूपान्तरित करनेवालों की संख्या बहुत मिल जाएगी। हिन्दी जाननेवाले सभी भाषाओं में उपलब्ध हैं और यह कोई छोटी बात नहीं है।

नवगीत

पुरखों की छुट्टी

षड़यंत्रों की दीवारें अब
उठतीं अपने गाँव

भोलेपन की इज्जत लुटती
परधानी के ऐश
चोर दूधिया के खूँटे से
चुरा ले गये भैंस

पहलवान का लगा अखाड़ा
छुटभइयों पर दाँव

मंदिर के पीछे अड्डा है
होती शाम नशीली
नफरत घूम रही गलियों में
हवा बहे जहरीली

पुरखों की छुट्टी, युवकों ने
जमा लिये हैं पाँव

लज्जा की दीवारें टूटीं
घर में बंदी बहनें
गलियाँ हैं भय की, मर्यादा
क्या पहने अब गहने?

वट–पीपल ओ आम–नीम की
रही न कोई छाँव।

मांगन मिश्र 'मार्तण्ड'
प्रधान संपादक 'संवदिया'
फारबिसगंज, अररिया,
मो.–9973269906

आलेख

समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन

डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय
जी.टी. रोड, अलीगढ़
मो.–98974 52431

समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन आधुनिक शिक्षा में पाश्चात्य संस्कृति और शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में विकसित हुआ है। पाश्चात्य शैक्षिक परिवेश को आत्मसात् करता हुआ यह शिक्षा–दर्शन अपना व्यवस्थित धरातल बना रहा है। समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन में आनंद और कल्याणवादी मूल्यों की स्थापना है तथा मानवतावादी जीवनादर्श का समाहार। तीव्रगति से बदलते हुए वैश्विक परिवेश में प्रतियोगितावादी, प्रतिस्पर्धावादी एवं बाजारवादी तथा उपयोगितावादी प्रवृत्तियाँ उभर चुकी हैं। ऐसी स्थिति और शैक्षिक परिवेश में एक पक्षीय शिक्षा–दर्शन आउटडेटेड घोषित हो चुका है। इसलिए समन्वयवादिता के ठोस धरातल पर ही शिक्षा–दर्शन स्थायित्व धारण कर सकता है। वसुधैव कुटुम्बकम् एवं विश्व एक नीड़ की उपनिषदीय संकल्पना तभी साकार सिद्ध हो सकती है जब शैक्षिक दर्शन का मानदण्ड सार्वभौमिक और सार्वकालिक हो। सहभाव समन्विति का स्वर निनादित करनेवाली सत्य की उद्भाविका शिक्षा ही सम्प्रति सशक्त शिक्षा है। अधिकांश शिक्षा–दार्शनिकों ने शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास ही माना है जिसके मूल में कल्याण और सामाजिकता के मंगल का अंतर्भाव निहित है। मेरा मानना है कि शिक्षा और शिक्षा–दर्शन में आधुनिक मनोविज्ञान, भारतीय–दर्शन एवं पाश्चात्य–शिक्षा का समन्वित सिद्धान्त–सूत्रों का समाहार देखा जा सकता है।

ज्ञातव्य है कि भावतत्त्व और कलातत्त्व का समन्वय, संवेदनों में समन्वय, अन्तःवृत्तियों का सामंजस्य, समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति झुकाव आदि ऐसे तथ्य और सत्य हैं जो समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन को सशक्त बनाते हैं, गतिशील करते हैं। विविध शिक्षा–दर्शनों को समाहित करने वाला, बिखरे हुए शिक्षा विषयक मूल्यों को सामंजित कर एकसूत्र में पिरोनेवाला समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन निरन्तर गतिमान है। डेनियल वेबस्टर के इस कथन से सहमत हुआ जा सकता है कि शिक्षा का कार्य भावनाओं को अनुशासित, आवेगों को नियंत्रित, प्रेरणाओं की उत्तेजित, धार्मिक भावनाओं को विकसित तथा नैतिकता की अभिवृद्धि करना है। यूनानी शिक्षा दार्शनिक सुकरात ने सर्वप्रथम कहा था कि शिक्षा का अर्थ प्रत्येक मानव के मस्तिष्क में अदृश्य रूप से विद्यमान संसार के सर्वमान्य विचारों को प्रकाश में लाना है। लगभग आठ वर्षों तक सुकरात का शिष्य रहने वाला प्लेटो की मुख्य चिंता आदर्श शिक्षा एवं समाज के लिए उसकी उपयोगिता है। इसी क्रम में उन्होंने शिक्षा की परिभाषा, समाज पर उसका प्रभाव, शिक्षा और जीवन का संबंध, शिक्षा में सामंजस्य की प्रवृत्ति, समाज–सुधार की प्रवृत्ति आदि तथ्यों का विवेचन किया है। प्लेटो के मुख्य चिंतन का उद्देश्य आदर्श राज्य का निर्माण है। प्लेटो के अनुसार–शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य तथा कार्य मानव प्रकृति और चरित्र को प्रशिक्षित करना है। शिक्षाग्राही एवं शिक्षक के व्यक्तित्व की सम्पूर्णता एवं समग्रता उसके समंजित व्यक्तित्व में निहित है, अनुभूतियों और संवेदनाओं की गहराई में है तथा बाह्य और आभ्यान्तर वृत्तियों के सामंजस्य धर्मा प्रवृत्तियों में है। शिक्षा एक अखण्ड सतत चलनेवाली प्रक्रिया है जो सामंजस्य और सौन्दर्यधर्मा है। यही समग्रता और सम्पूर्णता का वाचक बनकर शिक्षा और शिक्षण कहलाती है।

एकान्विति की इस स्थिति में शिक्षक और शिक्षार्थी की तादात्म्य की सहज स्थिति की चरम परिणति है। शिक्षा में भाव, बुद्धि, विवेक का सामंजस्य मानसिक धरातल पर आधृत होता है जिसमें शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को एकाग्रता मूल्यांकन का आधार बनती है। आत्मतत्त्व की निर्मिति का रहस्य भी इसी रागात्मक वृत्तियों के संश्लेषित धर्म में है। सम्प्रति शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षक एवं शिक्षाविद् समन्वयशील प्रवृत्ति की ओर उन्मुख हुए हैं। शिक्षा का कल्याण भी इसी में निहित है। बदलते हुए विश्व के परिवेश में शैक्षिक मानदण्डों के संबंध में समन्वय एवं सामंजस्य से बढ़कर कोई अन्य मानदण्ड उपयुक्त नहीं है। सही मायने में जीवन मूल्यों और जीवनादर्शों का स्रोत भी यहीं सामंजस्य है। व्यष्टि से समष्टि की मात्रा ही इसका मुख्यध्येय है। शिक्षक शिक्षण और शिक्षा में जीवन की समग्रता और सार्थकता की प्रतीति करता है। यही शिक्षा एवं शिक्षा दर्शन को सिद्धि और साधना का आनन्द भी है। वस्तुतः सम्प्रति शिक्षा परम्परागत धारणाओं के 'थीसिस' के लिए आधुनिक ज्ञान के 'एन्टीथीसिस' को लेकर अवतीर्ण हुई थी–अब एक ऐसे 'सिन्थिसिस' में परिणत हो गई है जो भारतीय और पाश्चात्य, परम्परागत और सामयिक, सामाजिक और वैयक्तिक तथा प्राचीन और नवीन के समन्वय की प्रतिनिधि कही जा सकती है–इसी से समन्वयवादी शिक्षा दर्शन भी सम्पृक्त है।

सुकरात ने सच्चा दार्शनिक पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि ''सच्चे दार्शनिक वे हैं जो सत्यज्ञान के प्रेमी हैं। यह सत्य ज्ञान उन्हें उस चिरन्तन प्रकृति का दर्शन कराता है, जो उत्पत्ति और विकृति से परिवर्तित नहीं होती। True Philosopher are those who are lovers of the vigon of truth." सत्य की खोज ही दर्शन का विषय है। यूनानी शिक्षा दार्शनिक अरस्तू ने पूर्व में ही कहा था कि ''शिक्षा व्यक्ति की मानसिक शक्ति का विशेष रूप में विकास करती है, जिससे वह परम सत्य, शिव और सुन्दर के चिंतन का आनन्द प्राप्त कर सकें। Education develops man's faculty, specially his mind so that he may he able to enjoy the contemplation of supreme truth, goodness and beauty-

यह पाश्चात्य शिक्षा का ही प्रभाव है कि आधुनिक भारत में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने लिखा है कि शिक्षा का अर्थ मस्तिष्क को इस योग्य बनाना है कि यह शाश्वत सत्य की खोज कर सके, उसे अपना बना सके और उनको अभिव्यक्त कर सके। Education means en abling the mind to find out the ultimate truth maping its own and giving expression to it-

दार्शनिक चिंतक इमैनुएल काण्ट यूरोपीय दर्शन को बुद्धिवाद की विचारधारा से प्रभावित थे, जिनका जन्म सन् 1724 में हुआ था। उनके अनुसार–''शिक्षा व्यक्ति की उस समस्त पूर्णता का विकास है जिसको उसमें क्षमता है।'' Education is the development in the indi vidual of all the perfection of which he is capable-

ध्यान देने की बात है कि जो शिक्षा विषयक विचार सुकरात ने व्यक्त किया है, उसी का परिमार्जित विचार उसका शिष्य प्लेटो ने व्यक्त किया है, भले ही शब्द अलग गढ़े हैं। प्लेटो का प्रभाव भी उसके शिष्य अरस्तू पर देखा गया है। एक अंतर अवश्य है–प्लेटो ने आदर्श काव्य को दर्शन में समाहित कर लिया है जबकि अरस्तू अन्तर पाता है और काव्यविशेष में सार्वभौमिकता खोजता है। पाश्चात्य आधुनिक शिक्षा शास्त्री टी.एस. इलियट ने ठीक ही कहा है कि. Aristolle is primarily a man of universal intelligence-

भारतीय शिक्षा दार्शनिक स्वामी विवेकानन्द (1863–1902) ने शिक्षा को पारिभाषित करते लिखा है कि ''शिक्षा मनुष्य में निहित सम्पूर्ण पूर्णता का प्रकटीकरण है।'' Education is the manifestation of all perfection already in man-

इसी क्रम में टैगोर (1861–1941) की शैक्षिक विचारधारा को लिया जा सकता है जिनका जन्म स्थान–विवेकानन्द की तरह कोलकाता ही रहा है। दोनों समकालीन हैं। टैगोर के अनुसार ''सर्वोच्च शिक्षा वही है, जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।'' The highest education is that which mages our life in harmony with all exislence.

टैगोर और विवेकानन्द दोनों समन्वयवादी विचारधारा के शिक्षा दार्शनिक हैं। विवेकानन्द चिंतन और क्रिया के बीच सामंजस्य स्थापित कर ज्ञान प्रदान करना उचित समझते हैं। उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य विश्वबन्धुत्व और मानवता की भावना का विकास करना माना है। टैगोर के अनुसार सत्य की खोज ही जीवन दर्शन हो सकता है और वही शिक्षा का भी दर्शन है। इस दर्शन को अग्रसर करने हेतु समन्वयवादी दृष्टिकोण परमावश्यक है। विवेकानन्द की तरह टैगोर भी शिक्षा का एक उद्देश्य विश्वबन्धुत्व का विकास मानते हैं जिसका आधार आध्यात्मिक और मानवता है। टैगोर प्रकृतिवादी हैं और वे रूसों की भाँति बालक को प्रकृति के संपर्क में रखना चाहते हैं तथा प्रकृति को पाश्चात्य कवि बर्ड्सवर्थ की तरह एक महान शिक्षक भी मानते हैं। उन्होंने प्रकृति में ब्रह्म का दर्शन किया है तथा आध्यात्मिक एकता के आधार पर अनेकत्व में एकत्व पर बल दिया है। उन्होंने शांति निकेतन की स्थापना 1920 में विद्यालय के रूप में की थी, जो आज विश्वभारती के रूप में विद्यमान है।

वस्तुतः शिक्षा सृजन करती है तथा शिक्षा दर्शन उस सृजन प्रक्रिया को सुव्यवस्थित एवं संस्कारित धरातल पर अधिष्ठित और प्रतिष्ठित करता है, जिसके कारण व्यक्ति सामाजिक– सांस्कृतिक सरोकारों में जुड़ता है और सुचरित्र–सचरित्र नागरिक बनता है। शिक्षक इसी अर्थ में शिक्षा और शिक्षा–दर्शन के माध्यम से सृजन करता है। अतएव समन्वय ही सृजन है, सृजन ही सामंजस्य है–सामंजस्य ही जीवन–सौन्दर्य है। सामंजस्य सौन्दर्य का वाचक तभी होता है, जब वह जीवन–क्षेत्र में व्यवस्था का प्रतीक बनता है। पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा दार्शनिकों ने सामंजस्य को सौन्दर्य का वाचक किसी–न–किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया है। भारतीय संस्कृति वैश्विक संस्कृति से प्रभावित रही है। यही कारण है कि भारतीय तत्त्वचिंतकों एवं शिक्षा–दार्शनिकों ने शिक्षा प्रक्रिया के क्षणों में समस्त वृत्तियों को समेटे हुए सामंजस्य स्थापन करने की पूरी कोशिश की है। यही शिक्षण प्रक्रिया निरन्तर शिक्षा जगत् में मान्य हुई है। समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन की सर्वोपरि उपलब्धिवादी शिक्षा से मुक्ति है। यह घटकवाद, वर्गवाद एवं गुटबाजी से परे है तथा अपनी अस्मिता को जागरूक एवं सबल बनाने हेतु सतत प्रयत्नशील है। अद्यतन परिवेश में भूमण्डलीकरण एवं प्रतियोगितावादी प्रवृत्ति के कारण प्रतिस्पर्धावादी संस्कृति पनप रही है। ऐसी स्थिति और परिस्थिति में कोई भी शिक्षाविद्, शिक्षा–शास्त्रों या शिक्षा–दार्शनिक अपने को यूरोपीय
शिक्षा चिंतनधारा से या पूर्ववर्ती भारतीय चिंतन प्रणाली से पूर्णरूपेण अलग नहीं रख सकता। यही कारण है कि मानवीय उदात्त मूल्यों, शिक्षादर्शों एवं जीवनादर्शों के परिप्रेक्ष्य में वह व्यापक धरातल पर अधिष्ठित होकर शिक्षण करता है, शिक्षा–दर्शन का निर्माण करता है। यह शिक्षण दृष्टि को ही समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन बन जाता है तथा परम्परागत समन्वयात्मक दृष्टिकोण का पोषण करता है। समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन में मौलिक प्रतिमान सूजन की भी संभावनाएँ निहित है। शैक्षिक अनेक मानदण्डों के परिपार्श्व में यह दर्शन सतत क्रियाशील है। अब इसका एक स्वतंत्र अस्तित्व बनता जा रहा है।

सफल शिक्षा–दार्शनिक के लिए मानसिक समृद्धता के साथ–साथ अधिकाधिक भावों और संवेदनाओं को समन्वित कर विवेचन विश्लेषण की क्षमता की आवश्यकता होती है जो शिक्षक या शिक्षा–दार्शनिक विरोधी रागात्मक प्रतिक्रियाओं का समीकरण करने में जितनी गहराई में उतरता है, उतना ही उसका हर व्यापक गंभीर, गहन एवं समृद्ध होता है। यह दर्शन शिक्षा के कारकों और घटकों से ही संतुष्ट नहीं होता, अपितु जीवन और जगत् के प्रति सबल एवं सक्षम समाधान भी प्रस्तुत करता है। सबल एवं समस्त की इसका ध्येय नहीं होता, बल्कि समस्याओं के बीच मानव को समायोजित होने को प्रेरित और प्रोत्साहित भी करता है। वास्तव में दार्शनिक व्यक्तित्व की क्षमता और समृद्धि उसके अभिव्यंजना कौशल के समन्वय में निहित है. जिसकी प्रस्तुतीकरण में सहृदय समाज, शिक्षार्थी आदि एक तदाकार की स्थिति में पहुँच जाता है। यही शिक्षा दर्शन की सिद्धि और साधना का आनन्द है।

भारतीय संस्कृति स्वयमेव समन्वयात्मक संस्कृति है, जिसके मूल में सामंजस्य की धारा प्रवाहित होती आ रही है। प्रजातांत्रिक प्रणाली भी इसी समन्वय की धरोहर है। आध्यात्मिक चेतना भारत की इसी समन्वय के धरातल पर अवलंबित है। अतएव भारत की चिंतनधारा की अत्याधुनिक उपलब्धि समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन है। समन्वयशील से मेरा आशय मात्र दो या दो से अधिक मतों, सिद्धान्तों या शिक्षा दर्शनों से न होकर अनेक शिक्षा सिद्धान्तों एवं दार्शनिक विचारधाराओं के समीकरण से भी है। भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा–दर्शनों का अनुशीलन एवं विवेचन विश्लेषण इस वर्ण्य–विषय रहा है। सभी विचारधाराओं एवं दार्शनिक सिद्धान्तों का समन्वयवादी तत्त्व प्रत्येक शिक्षाशास्त्री एवं दार्शनिक के अनुशीलन में देखने को मिलते हैं। हाँ, भारतीय शिक्षाविदों ने पाश्चात्य शिक्षा सिद्धान्तों को आत्मसात् कर अपने पर्ववर्ती दार्शनिकों के सिद्धान्त–सूत्रों को किसी–न–किसी रूप में अंगीकार कर भारतीय परिप्रेक्ष्य में सर्वथा नए आयाम के साथ प्रस्तुत किया है। सच्चा दर्शन असीम और सीम, अनेकता और एकता, विघटन और संघटन, विषम और सम, विग्रह और संधि, अव्यवस्था और व्यवस्था आदि परिस्थितियों में सार्वभौमिकता के धरातल पर सामंजस्य स्थापन करता है।

विज्ञानी हरबर्ट स्पेंसर का जन्म 1820 ई. में इंग्लैंड के डर्बी नामक स्थान पर हुआ था। दर्शनशास्त्र, विज्ञान एवं साहित्य में पिता की रुचि होने के कारण उन्होंने इनका गहन अध्ययन किया, लेकिन 13 वर्ष की आयु में उनकी शिक्षा विषम परिस्थितियों के कारण समाप्त हो गई। हरबर्ट स्पेंसर ने शिक्षा के क्षेत्र में यथार्थवादी दर्शन का प्रतिपादन किया था। हरबर्ट स्पेंसर के अनुसार शिक्षा पूर्ण जीवन के लिए तैयारी है। शिक्षा को हमें बताना चाहिए कि हम अपने शरीर एवं मन के प्रति कैसा व्यवहार करें, अपने कार्यों को किस प्रकार गठन करें, किस प्रकार अपने परिवार का पालन–पोषण करें, एक नागरिक के रूप में किस प्रकार का व्यवहार करें, अपनी पूर्ण शक्तियों का अपने तथा दूसरों के अधिकतम कल्याण के लिए किस प्रकार प्रयोग करें।
Education is the preperation for complete living. Education must tell us in what way to treat the body. In what way to creat the mind, in what way is manage our affairs in what way to bring our family, in what way to behave as a citizen, in what way to utilige those resources of happineses which nature repplies, how to use all faculties to greatest advantage to our selves and others.

हरबर्ट स्पेंसर ने अपने शिक्षा–दर्शन द्वारा जीवन के यथार्थवादी दृष्टिकोण का उद्घाटन किया है। इस प्रकार उनका शिक्षा–दर्शन वैज्ञानिकता, उपयोगिता, व्यावहारिकता एवं सामाजिकता का समन्वित शिक्षा–दर्शन है। उन्होंने शिक्षा का उद्देश्य जीवन की पूर्ण तैयारी निश्चित कर शिक्षा के क्षेत्र में एक व्यवहारवादी दर्शन का सूत्रपात किया है। उनके सिद्धान्त और शिक्षा–दर्शन में रूसो का प्रकृतिवाद, पेस्टालॉजी का सामंजस्यवाद, हरबर्ट का

नैतिकतावाद, फ्रॉबेल का एकात्मवाद एवं जॉन डीवी का व्यवहारवाद का प्रतिनिधित्व देखने को मिला है। वस्तुतः शिक्षा–दर्शन के माध्यम से शिक्षक सभी तत्त्वों एवं कारकों में सामंजस्य स्थापित कर समन्वयवादी दृष्टिकोण से शिक्षण–कला को प्रभावशाली बनाता है, जिसमें शिक्षा–दर्शन को विभिन्न शाखाओं में भी सामंजस्य स्थापन का संदेश देता है।

'भारतीय शिक्षा–दर्शन एवं राष्ट्रीय शिक्षानीति' पुस्तक में डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय ने लिखा है कि ''इस प्रकार बालक को स्वाभाविक क्रियाशीलता में पेस्टालॉजी किसी भी प्रकार की बाधा पसंद नहीं करते। वे समन्वयवादी, सामंजस्यवादी शिक्षा दार्शनिक है, जिन्होंने पाठ्यक्रम का संगठन भी इस प्रकार से करने का सुझाव दिया है कि उसमें बालक का सामंजस्यपूर्ण विकास हो सके।(पृ. 135)

हरबर्ट के अनुसार शिक्षा नैतिक चरित्र का उचित विकास है। मानव को नैतिक या सच्चरित्र बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसका दृष्टिकोण व्यापक किया जाए जिससे उसकी दृष्टि अधिक से अधिक क्षेत्र तक पहुँच सके। इस कारण उनकी रुचियों को बहुमुखी होना चाहिए। रुचियों की बहुमुखता उसके मन में विचारचक्र उत्पन्न करेगी और यह चक्र उसे समस्त परिस्थितियों में यथायोग्य व्यवहार की शक्ति प्रदान करेगा। स्पष्ट है कि बालक के ज्ञान के विस्तार में दृष्टिकोण की व्यापकता, रुचियों की बहुमुखता, परिस्थितियों की अनुकूलता एवं व्यवहार की शक्तिमता ऐसे तत्त्व और कारक हैं, जो परोक्षतः समन्वयवादी एवं सामंजस्यवादी शिक्षा–दर्शन का संकेत करते हैं।

फ्रॉबेल का ऐक्यानुभूतिपरक शिक्षा–दर्शन वास्तव में एक विशिष्ट दर्शन है। जर्मनी में 1783 ई. में जन्मे फ्रॉबेल मात्र 17 वर्ष की आयु में जेना विश्वविद्यालय में प्रवेश पा लिए। उनके मतानुसार ''शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक अपनी जन्मजात शक्तियों को अभिव्यक्त करता है।''
Education is a process by which a child developes his in&ternal and external powers.

फ्रॉबेल का स्पष्ट मत है कि विश्व की समस्त वस्तुओं में पारस्परिक समन्वय है, सामंजस्य है, तादात्मीकरण है। विविधता में एकता है, अनेकता में एकता है। अनेक आध्यात्मिक शिक्षा सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के समस्त पदार्थों में एक शाश्वत, चिरन्तन नियम व्याप्त है। यह शाश्वत नियम निश्चित रूप से किसी सर्वव्यापी सार्वभौमिक एकता पर अवलम्बित है। यह दैवीय सत्ता ही सभी पदार्थों को संतुलित कर सामंजस्य स्थापन द्वारा सृष्टि को संचालित करती है। अतः शिक्षा स्वधर्म की प्रेरणा से ही अनेकता में एकता का संधान करती है।

प्रयोगवादी शिक्षा–दर्शन के सर्वाधिक लोकप्रिय व्यवहारवादी शिक्षा दार्शनिक जॉन डीवी का जन्म 1859 ई. में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में हुआ था। उनके शिक्षा–दर्शन का प्रभाव अमेरिका के साथ विश्व के सभी सभ्य एवं सुसंस्कृत देशों पर पड़ा है। उन्होंने वरमॉट और जॉन हॉपकिंस विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण कर सन् 1930 में मिशीगन और शिकागो विश्वविद्यालयों में शिक्षण–कार्य किया है। कोलम्बिया विश्वविद्यालय न्यूयार्क ने उन्हें 1904 ई. में दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर नियुक्त कर दिया। जॉन डीवी के अनुसार ''जिस प्रकार जैविक जीवन के लिए भोजन तथा प्रजनन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सामाजिक जीवन के लिए शिक्षा की आवश्यकता होती है। शिक्षा का कार्य असहाय प्राणियों के विकास में सहायता पहुँचाता है, जिससे कि वह सुखी, नैतिक और कुशल मानव बन सके।''

जॉन डीवी ने शिक्षा को त्रिमुखी प्रक्रिया माना है, जिसमें शिक्षक, शिक्षार्थी एवं सामाजिक शक्तियों को समन्वित एवं सामंजस्यपूर्ण योगदान रहता है। ये तीनों ध्रुवों की पारस्परिक समन्वय की क्रिया की परिणति ही शिक्षा है। कारण है कि सामाजिक शक्तियों समाज और सामाजिक वातावरण के सान्निध्य से शिक्षक और शिक्षार्थी को विषय सामग्री देती है, जिसे हम पाठ्यक्रम कहते हैं।

डीवी का शिक्षा–दर्शन उपयोगितावाद पर आधारित है। उन्होंने शिक्षा विषयक मूल्य को ही सत्य माना है। वही चिरन्तन है, सत्य है एवं उपयोगी है। वे विकासवाद के समर्थक एवं पक्षधर हैं तथा ज्ञानलोक और क्रियालोक के सामंजस्य से ही सामाजिकोत्थान मानते हैं। उनके शिक्षा–दर्शन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक कुशलता का विकास करना है। समन्वय शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ को परिभाषित करने के साथ–साथ समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन को पारिभाषित करना अधिक समीचीन है। समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन वह दर्शन है जिसमें शिक्षा–दर्शन की अनेक प्रवृत्तियों का समन्वय देखने को मिलता है। यह दर्शन सामंजस्य का स्वर ध्वनित करता है। अधिकांश शिक्षा–शास्त्रियों ने भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा–दार्शनिक सिद्धान्तों को समन्वित कर अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। भारतीय शिक्षा को यह शैक्षिक विचारधाराओं जो भारतीय एवं पाश्चात्य शैक्षिक विचारधाराओं को समन्वित कर अपना सिद्धान्त प्रतिपादित करती है, उसमें सामंजस्यवादी स्वर ध्वनित हुआ है। संश्लेषण के ताने–बाने से बुना हुआ यह समन्वयवादी विचार भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षा शास्त्रीय परम्परा से प्रस्तुत है। यह शिक्षा–दर्शन अनेक शैक्षिक विचारों का मिला–जुला रूप प्रस्तुत करता है जिसका परिप्रेक्ष्य भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाशास्त्र के संश्लेषण पर आधारित है। इस प्रकार समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन का प्राणतत्व भारतीय चिन्तन है जिसमें पश्चिमी चिन्तन का पूर्ण उपयोग हुआ है।

समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन में पाश्चात्य शिक्षा–सिद्धान्तों का समीकरण होते हुए भी उसकी परिणति में भारतीय चिन्तन का समन्वय हुआ। समन्वय का परिवेश व्यापक होता है, इसमें अलग– अलग शिक्षा सिद्धान्तों का तादात्म्य एक विशेष चिंतन दृष्टि लिए हुए होता है। चूँकि शिक्षा मानवीय सत्यों का उद्घाटन करती है तथा भावात्मक सत्य विविध अनेकता के बीच मानवीय एकता की पहचान कराते हैं, इसीलिए पाश्चात्य और भारतीय शैक्षिक विचारों की स्थापनाओं में बहुत दूर तक समानता है। यही कारण है कि शिक्षा के बुनियादी सत्यों में केन्द्रित प्राचीन और नवीन शिक्षाशास्त्र दर्शन में भी बहुत दूर तक समानता है। शैक्षिक विचारों की इस समानता के सत्य के साथ वैशिष्ट्य का सत्य का शिक्षा दर्शन में महत्त्वपूर्ण तथ्य है। समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन से मेरा अभिप्राय मात्र दो या दो से अधिक मतों या शैक्षिक विचारों के समन्वय से न होकर अनेक सिद्धान्तों एवं शैक्षिक विचारधाराओं के समीकरण से भी है। समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन, मूलतः सामंजस्य धर्म दर्शन है, जिसमें अनेक चित्तवृत्तियों का समीकरण होता है। इस शिक्षा–दर्शन में अनेक सिद्धान्त सूत्रों का समीकरण, विभिन्न मतवादों में अभिन्नत्व एवं अनेकत्व में एकत्व परिलक्षित होता है। अनेक शैक्षिक विचारों का प्रेरणा केन्द्र इस शिक्षा दर्शन का मुख्य उद्देश्य एकत्व की स्थापना है। अनेकत्व में एकत्व का संधान ही इसका परिप्रेक्ष्य है। समन्वय, सामंजस्य, समिश्रण, समीकरण, तादात्म्य आदि शब्द भी इस शिक्षा–दर्शन में पर्याय बनकर ही प्रयुक्त होते हैं। डॉ. रामदरश मिश्र ने लिखा है कि ''हिन्दी में कभी–कभी समन्वय, सामंजस्य, समिश्रण आदि शब्दों का प्रायः पर्यायवाची मानकर एक ही अर्थ में प्रयोग होता है। परस्पर में आपाततः विरुद्ध प्रतीत होनेवाली वस्तुओं के प्रतीयमान विरोध का निषेध करके अनेक मूल में विराजमान अभेद सत्ता तथा अनेक तत्त्वों के अविरोधी स्वरुप का साक्षात्कार ही वास्तविक समन्वय है।

स्पष्ट है कि समन्वयवादी शिक्षा–दर्शन में सामंजस्य ही समन्वय है। समन्वय ही सौन्दर्य है। सौन्दर्य ही कला या शिक्षा या साहित्य है। साहित्य जो आत्मानुभूति व आत्माभिव्यक्ति का पर्याय बना हुआ है। वह भी इसी सामंजस्य की मनोभूमि पर प्रतिष्ठित है ।

भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में समन्वयात्मक शिक्षा–दर्शन की प्रवृत्ति के मूल में पाश्चात्य शिक्षा सिद्धान्तों के सूत्रों के समन्वय की भावना है। भारतीय शिक्षा–शास्त्रियों ने भारतीय शिक्षाशास्त्र एवं पाश्चात्य शिक्षाशास्त्र का अध्ययन करके उनमें से उन तत्त्वों को ग्रहण किया है, जो शिक्षा के मूल्यांकन का व्यापक दृष्टिकोण करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। इसलिए इस शिक्षा–दर्शन की प्राचीन और नवीन दोनों दृष्टियों से सर्वांगीण अध्ययन प्रस्तुत करनेवाली समन्वयवादी प्रवृत्ति वास्तव में शिक्षा–दर्शन के क्षेत्र में एक नव्य आयाम प्रस्तुत करने में सक्षम है।

मिथिलेश आदित्य
रानीगंज, अररिया (बिहार)
मो.–9973536489

चूड़ामणि नेपाल 'अकिंचन'
(नेपाली से हिन्दी अनुवाद)

बहने लगी तुम मेरी पलकों में

तुम बह रही थीं आँसुओं में–
मैंने पलकों से एक दीवार गढ़ दी
पर यादों की बाढ़ थी
जो किसी दीवार से नहीं रुकी

कुछ ही पल देख पाया था तुम्हें–
कॉलेज में, परीक्षा देते हुए
कलम थम गई थी हाथों से
और न जाने कितनी बार
चुपके से निहारा था
तुम्हारी हौले–सी मुस्कान

सपने में अगली बार–
जब मैं तुम्हें बाँहों में भरने ही वाला था
अचानक जाग गया...
और सब कुछ पीछे छूट गया
एक बीते हुए जलपोत की तरह

तीसरी बार–
विमान उड़ान भरने को था
तुमने हवा में एक चुम्बन भेजा था
रनवे की ओर
जहाँ मैं खड़ा था
बस देखता रह गया

चौथी बार–
तुमने हाथ उठाया था विदा में
और उसी दिन
किसी ने तुम्हारी माँग में
सिन्दूर भर दिया था–
साक्षी थे वहाँ
गुराँस के खिलते फूल

पाँचवीं बार–
तुमने लाज से सिर झुका लिया था
शब्द नहीं थे
बस मौन की भाषा थी
जो बहुत कुछ कह गई

अब मैं जीवन के वेंटिलेटर पर हूँ
और तुम मेरी धड़कनों में
प्राण बनकर बह रही हो
तुम्हारी स्मृति ही
मेरी साँसों की आख़िरी ऑक्सीजन है–
जो मेरी आँखों से
लगातार बहती जा रही है।

गीत : निठुर नियति के खेल निराले

निठुर नियति के खेल निराले
निसिदिन झरैं अश्रु लोचन से
रूठा क्यों तू ऊपर वाले
तुझे पुकारूँ हर–पल हर–क्षण
अब तो सुन ले मन के हाले

स्वप्न बुनत एकटक मग जोवत
दुःखन लगे नैन मतवाले
बीती उमरिया चल–चल
हाय! पाँव में पड़ गये छाले

हे वंशीधर, मुरली मनोहर
नटवर–नागर गोकुल वाले
ऐसे तारो इस पतिता को
ज्यों मीरा और बृज के ग्वाले

जीवन–पथ काँटों की शय्या
लोभ–मोह ने पहरे डाले
अटकी–भटकी तरुणाई है
थाम ले बैंया राधा वाले
निठुर नियति के खेल निराले।

2.
चले आओ न एक बार
मेरे सनम! मेरे जाने बहार
चले आओ न एक बार...

निगाहों में अपनी बसा लूँ आ तुझको
आ जा जिगर में छुपा लूँ मैं तुमको
तब आएगा दिल को चैन–करार
चले आओ न एक बार...

मिलकर लिखेंगे हम ऐसी कहानी
दुनिया में गूँजेगी जिसकी रवानी
धड़कते दिलों की है ये ही पुकार
चले आओ न एक बार...

आज मिटाएँगे शिकवे–गिलों को
आपस में जोड़ेंगे टूटे दिलों को
नसीबों में अपने भी सावन–बहार
चले आओ न एक बार...

3.
आज सुहानी भारत की
तस्वीर बनाने आई हूँ
दुहिता हूँ, विदुषी– वैदिक की
नवगीत सुनाने आई हूँ

जब–जब शून्य विचारों ने
अबला कहकर धिक्कार है
तब–तब नारी ने दुर्गा बन
दानव–दल को संघारा है
धन रूप–रुचिर भूदेवी सा
कुल–भाग जगाने आई हूँ
दुहिता हूँ, विदुषी–वैदिक की
नवगीत सुनाने आयी हूँ।

हो अंत दम्भ–पाखंडों का
जो कन्या हत्या को जनते हैं
ऐसे निर्दयी–व्यभिचारी का
जो लव–ज़ेहादी बनते हैं
'भारती' की झंकृत वीणा से–
स्वर–संधान कराने आई हूँ
दुहिता हूँ, विदुषी–वैदिक की
नवगीत सुनाने आयी हूँ।

आज सुहाने भारत की
तस्वीर बनाने आई हूँ
दुहिता हूँ, विदुषी–वैदिक की
नवगीत सुनाने आयी हूँ।

आलेख

इंटरनेट और तकनीकी युग में हिंदी का बढ़ता प्रभाव

विभा कनन (शिक्षिका)
बोडिपलायम, मदुकरई, कोयम्बतूर, तमिलनाडु
मो. 08957637355

बदलते समय में हिंदी की अविचलता :

भाषा केवल संवाद का साधन नहीं होती, बल्कि वह संस्कृति, पहचान और भावनाओं की अभिव्यक्ति का भी माध्यम है। हिंदी, जो भारत की सबसे अधिक बोली जानेवाली भाषा है, आज तकनीकी युग में एक नई उड़ान भर रही है। इंटरनेट, मोबाइल, सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स ने हिंदी को उस मुकाम तक पहुँचाया है, जहाँ वह न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज करा रही है। यदि कभी यह कहा जाता था कि तकनीक केवल अंग्रेजी की भाषा है, तो आज यह धारणा बदल चुकी है। अब तकनीक हिंदी को अपने साथ लेकर चल रही है और हिंदी तकनीक को जन–जन तक पहुँचाने का माध्यम बन रही है।

डिजिटल दुनिया में हिंदी की नई पहचान :

इंटरनेट पर पहले अंग्रेजी का ही वर्चस्व था, लेकिन जैसे–जैसे भारत में इंटरनेट यूजर्स की संख्या बढ़ी, वैसे–वैसे हिंदी की माँग और उपस्थिति भी बढ़ती गई। रिपोर्ट्स के अनुसार, इंटरनेट पर हिंदी पढ़नेवालों की संख्या अंग्रेजी की तुलना में कई गुना तेजी से बढ़ रही है। गूगल और केपीएमजी की एक रिपोर्ट कहती है कि आनेवाले वर्षों में भारत में इंटरनेट पर हिंदी उपयोगकर्ता अंग्रेजी उपयोगकर्ताओं से दोगुने हो जाएँगे। आज लगभग हर बड़ी वेबसाइट, ऐप और पोर्टल हिंदी में उपलब्ध है। चाहे ऑनलाइन शॉपिंग हो, बैंकिंग हो या फिर हेल्थ सेवाएँ–हिंदी अब हर जगह उपयोग हो रही है।

सोशल मीडिया : हर दिल की भाषा हिंदी

सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म्स ने हिंदी को सबसे बड़ा मंच दिया है। फेसबुक, ट्विटर (VC X), इंस्टाग्राम और यूट्यूब पर हिंदी कंटेंट की लोकप्रियता अद्‌भुत है। यूट्यूब पर हिंदी चैनल्स करोड़ों सब्सक्राइबर्स पा रहे हैं। मीम्स, रील्स और शॉर्ट वीडियो में हिंदी सबसे ज्यादा इस्तेमाल की जानेवाली भाषा है। हिंदी कविताएँ, शायरी और विचार सोशल मीडिया पर वायरल होते हैं। सोशल मीडिया ने यह साबित कर दिया कि हिंदी केवल संवाद की भाषा नहीं, बल्कि भावनाओं और रचनात्मकता की सबसे बड़ी अभिव्यक्ति है।

मोबाइल और ऐप्स ने आसान की हिंदी की राह :

स्मार्टफोन क्रांति ने हिंदी को आम आदमी तक पहुँचा दिया। अब हिंदी कीबोर्ड्स आसानी से उपलब्ध हैं। गूगल वॉयस टाइपिंग से लोग केवल बोलकर हिंदी लिख सकते हैं। व्हाट्सएप, टेलीग्राम और अन्य चैटिंग ऐप्स पर हिंदी में बातचीत करना आम हो चुका है। आज गाँव–गाँव के लोग मोबाइल से हिंदी में समाचार पढ़ रहे हैं, ऑनलाइन लेन–देन कर रहे हैं और शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। यह सब तकनीक की वजह से संभव हुआ है।

डिजिटल पत्रकारिता हिंदी समाचारों का सुनहरा दौर :

हिंदी पत्रकारिता का इतिहास बहुत पुराना है, लेकिन डिजिटल युग ने इसे नई ऊर्जा दी है। लगभग हर बड़ा अखबार और न्यूज चैनल अब अपनी हिंदी वेबसाइट और मोबाइल ऐप चला रहा है। वेब पोर्टल्स जैसे भास्कर, आजतक, नवभारत टाइम्स, दैनिक जागरण आदि करोड़ों पाठकों तक पहुँच रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में लोग अब टीवी या रेडियो पर निर्भर नहीं हैं, बल्कि सीधे मोबाइल से हिंदी में ताजा खबरें पढ़ लेते हैं। डिजिटल पत्रकारिता ने हिंदी को राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी पहचान दिलाई है।

ऑनलाइन शिक्षा में हिंदी की चमक :

तकनीकी युग ने शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति कर दी है और इसमें हिंदी की भूमिका बेहद अहम है। विभिन्न ऑनलाइन कोर्सेज अब हिंदी में उपलब्ध है। सरकारी और निजी प्लेटफॉर्म जैसे स्वयं, दीक्षा, बायजूस, अनअकैडमी आदि हिंदी माध्यम में पढ़ाई की सुविधा दे रहे हैं। ग्रामीण और छोटे कस्बों के छात्र, जो अंग्रेजी की वजह से पीछे रह जाते थे, अब हिंदी माध्यम से भी उच्च गुणवत्ता की शिक्षा पा रहे हैं। इससे शिक्षा का लोकतंत्रीकरण हुआ है और हिंदी ने तकनीक की मदद से करोड़ों छात्रों तक ज्ञान की पहुँच सुनिश्चित की है।

मनोरंजन जगत : OTT पर छा रही है हिंदी :

तकनीक ने मनोरंजन जगत को भी बदल दिया है। नेटफ्लिक्स, अमेजन प्राइम, डिज्नी हॉटस्टार जैसे OTT प्लेटफॉर्म्स पर हिंदी कंटेंट की माँग सबसे अधिक है। हिंदी वेब सीरीज और फिल्में केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी देखी जा रही है। सबटाइटल्स और डबिंग ने हिंदी कंटेंट को वैश्विक दर्शकों तक पहुँचा दिया है। वॉलीवुड गीत और हिंदी संगीत यूट्यूब पर सबसे ज्यादा सुने जाते हैं। यह स्पष्ट करता है कि तकनीक और मनोरंजन ने मिलकर हिंदी को विश्वपटल पर स्थापित कर दिया है।

हिंदी का प्रोत्साहन करती सरकारी नीतियाँ :

भारत सरकार और विभिन्न राज्य सरकारें हिंदी को तकनीकी मंचों पर प्रोत्साहित कर रही हैं। सरकारी वेबसाइट्स अब हिंदी में भी उपलब्ध है। UIDAI IRCTC, आधार, रेलवे और बैंकिंग सेवाएँ हिंदी में संचालित की जा रही हैं। सरकारी नीतियों ने तकनीक और हिंदी के बीच सेतु का काम किया है।

चुनौतियाँ : अंग्रेजी का दबदबा और तकनीकी सीमाएँ :

यद्यपि हिंदी ने डिजिटल दुनिया में बड़ी उपलब्धियाँ हासिल की हैं, फिर भी कुछ चुनौतियाँ मौजूद हैं– तकनीकी शब्दावली अधिकतर अंग्रेजी आधारित है। कई ऐप्स और सॉफ्टवेयर अभी भी पूरी तरह हिंदी समर्पित नहीं है। हिंदी में कंटेंट की गुणवत्ता को लेकर कभी–कभी सवाल उठते हैं। ग्रामीण इलाकों में इंटरनेट कनेक्टिविटी की कमी से हिंदी डिजिटल विकास धीमा हो जाता है। इन चुनौतियों का समाधान करना जरूरी है, ताकि हिंदी वास्तव में तकनीक की मुख्य भाषा बन सके।

AI और हिंदी के तालमेल से होगा उज्ज्वल भविष्य :

भविष्य में हिंदी का तकनीकी संसार और भी विस्तृत होगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) और मशीन अनुवाद से हिंदी को वैश्विक स्तर पर पहुँचाया जा सकेगा। बिंजइवजे और Virtual Assistants अब हिंदी में बातचीत करने लगे हैं। मेटावर्स, AR और VIR जैसी तकनीकें भी धीरे–धीरे हिंदी में उपलब्ध होगी। हिंदी ब्लॉगिंग, व्लॉगिंग और पॉडकास्टिंग आनेवाले समय में और भी लोकप्रिय होंगे।

यह कहना गलत नहीं होगा कि आनेवाले दशकों में हिंदी न केवल भारत की, बल्कि विश्व की डिजिटल भाषाओं में अग्रणी भूमिका निभाएगी।

तकनीक से समृद्ध होती हिंदी :

तकनीक और इंटरनेट ने हिंदी को एक नई पहचान दी है। आज हिंदी गाँव–गाँव से लेकर महानगरों तक और भारत से लेकर विदेशों तक अपनी छाप छोड़ रही है। मोबाइल, सोशल मीडिया, डिजिटल शिक्षा, पत्रकारिता और मनोरंजन हर क्षेत्र में हिंदी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई है।

आज समय की माँग है कि हम तकनीक का उपयोग कर हिंदी को और अधिक सशक्त बनाएँ। यदि अंग्रेजी तकनीक की भाषा है, तो हिंदी तकनीक की आत्मा बन सकती है। तकनीक ने हिंदी को नई उड़ान दी है और आनेवाले समय में हिंदी न केवल भारत की, बल्कि पूरी दुनिया की डिजिटल पहचान बनकर उभरेगी।

जीवनी

क्या आप डॉ. बलदेव को जानते हैं?

बसंत राघव
मो. 9099011458

रायगढ़ कत्थक घराने का प्रचार–प्रसार सबसे पहले डॉ. बलदेव ने ही किया था। तमाम विरोधों के बावजूद उन्होंने ही सर्वप्रथम रायगढ़ कत्थक घराना को अपने तर्कपूर्ण लेखों से परिभाषित भी किया; लेकिन कुछ अति महत्त्वाकांक्षी कलाकार इसका श्रेय भी अपने हिस्से कर लेना चाहते हैं, तभी तो वे उनके नाम का उल्लेख करना जरूरी नहीं समझते। कहने का मतलब यह है कि रायगढ़ कत्थक घराने को प्रसिद्धि डॉ. बलदेव और यहाँ के कथक कलाकारों ने दिलाई। बाद के लोग शोधार्थी मात्र है; क्योंकि उनमें स्वाभाविक मौलिकता की कमी है।

'रायगढ़ कत्थक घराना' को डॉ. बलदेव ने 1979 में रंग–संधान के संपादक अनिल कुमार और 1980 की संगीत पत्रिका को संप्रेषित किया था। मासिक संगीत में प्रकाशित उनका लेख 'रायगढ़ कथक घराना ऐतिहासिक महत्त्व का है।

डॉ. बलदेव को देश के अनेक सुप्रसिद्ध नर्तकों के नृत्य देखने के भी सुअवसर मिले थे। उन्होंने संगीत–नृत्य का साहित्य भी पढ़ा। नृत्यविदों की महत्त्वपूर्ण बातें भी सुनीं और अपने रायगढ़ के नर्तकों के नृत्य भी देखे। उनको उनमें एक विशिष्टता और अनन्यता दिखी। डॉ. बलदेव ने सुप्रसिद्ध कला समीक्षक स्व. अनिल कुमार की प्रेरणा से एक लेख लिखा, जिसका शीर्षक था 'कथक रायगढ़ घराना'। सेठ महावीर अग्रवाल, किमान डालमिया के संयोजकत्व में जब यह लेख चक्रधर कला परिषद् में पढ़ा गया, तो इसे व्यापक समर्थन मिला और अध्यक्ष प्रमोद वर्मा को भोपाल में आयोजित '79 कथक शिविर' में पढ़ने को दिया गया तो, वहाँ भी इसकी तारीफ हुई। जब यह लेख हेर–फेर के साथ प्रमोद वर्मा के नाम से 'पूर्वाग्रह 34' में प्रकाशित हुआ तो इसकी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई; लेकिन मूल लेख 'संगीत' (सितम्बर 1980) में प्रकाशित हुआ तो संगीतज्ञों, नृत्यविदों के बीच बहुत बड़ा सवाल खड़ा हो गया। समर्थन भी मिले और आलोचनाएँ भी हुई।

डॉ. राजू पांडेय लिखते हैं– ''राजा चक्रधर सिंह और रायगढ़ के कथक घराने पर उनका शोध चमत्कृत कर जाता है। रायगढ़ की साहित्यिक–सांस्कृतिक विरासत को समझने के लिए केवल एक ही रास्ता है और वह डॉ. बलदेव के अन्वेषणपरक लेखों से होकर गुजरता है।''

''रायगढ़ रियासत की संगीत–परंपरा और कथक के रामगढ़ धराने पर डॉ बलदेव का लेखन प्रामाणिक माना जाता है एवं स्रोत सामग्री के रूप में प्रयुक्त होता है। उनकी पुस्तक 'रायगढ़ का सांस्कृतिक वैभव' रायगढ़ के सांस्कृतिक इतिहास की मानक और संग्रहणीय जानकारी देती है।''

आलोचक नंदकिशोर तिवारी लिखते हैं कि ''रायगढ़ के सांगीतिक महत्त्व को प्रकाश में लाने का भगीरथ प्रयास डॉ. बलदेव ने किया। उन्होंने रायगढ़ के कथक के महत्त्व को दर्शाते हुए उसकी सम्यक् विवेचना की।''

प्रसिद्ध व्यंग्यकार विनोद साव जी के एक फेसबुक पोस्ट पर नासिर अहमद सिकन्दर जी की टिप्पणी–''इंटरव्यू बहुत ही सार्थक रहा। चार–पाँच बातें, तो उन्हें एक तरह स्थापित ही कर देती हैं, जिसके कि वे हकदार थे। एक–छत्तीसगढ़ के रामचन्द्र शुक्ल, दो–छायावाद और रायगढ़ के संगीत घराने पर उनका लेखन, तीन–छत्तीसगढ़ के कवियों पर संकलन, चार–वैसे एक बात यह छूती है कि उन्होंने प्रगतिवाद पर भी पुस्तक लिखी है। पन्त, निराला पर उन्होंने लम्बे लेख लिखे हैं। छत्तीसगढ़ ने उन्हें कोई मान–सम्मान नहीं दिया, उनके अवदान पर न किसी ने लिखा; क्योंकि वे एक बेचारे सीधे–सादे सिर्फ बड़े लेखक थे।''

कविता :

कौन है वो?

चन्द्रशेखर शर्मा 'चन्द्रेश'
विवेक विहार जगतपुरा,
जयपुर
मो.–9460553906

प्यार में वो खिली खिली
धूप जैसी निखर रही
संध्या की बेला में वो
मीठी–मीठी बोल रही

मधुर–मधुर निशा में वो
चांदनी–सी चमक रही
मनचले बादलों में वो
दामिनी–सी दमक रही

आदि भी है, अंत भी है
शिव की शिवांगी है वो
फसलों की निराई–गुड़ाई
खेतों की मल्हार है वो

कदली भी है, कंद भी है
अन्न का भंडार है वो
थोड़ी थोड़ी मतवाली, पर
हर घर में महकती है वो

क्या उसकी आकृति है
क्या उसकी प्रकृति है
कोई उसे पहचाना नहीं
आई कहाँ से, जाती कहाँ वो

कोई कभी उसे जाना नहीं
यही उसकी विशेषता है
लेकिन नभ, जल, थल के
हर जीव में बसती है वो

क्योंकि सभी के जीवन की
ऑक्सीजन है वो
इसलिए नभ, जल, थल में
हर समय मिलती है वो।

कहानी

किसके लिए

डॉ. पूरन सिंह
वेस्ट पटेल नगर, नई दिल्ली
फोन रू 9868846388

मैंने जब से होश सँभाला, माँ को अपमानित होते ही देखा। पिता बात–बेबात के माँ को घुड़क देते, तिरस्कृत कर देते। माँ सहमकर रह जाती थी। मुझे पिता पर बहुत गुस्सा आता। जी चाहता पिता से खूब लड़ें और वे जैसे मेरी माँ को अपमानित करते हैं, वैसे ही माँ भी उन्हें अपमानित करे; लेकिन जब उनके सामने होता, मैं नर्वस हो जाता था और यही सब देखते–देखते मैं जवान हुआ। स्कूल से कॉलेज पास करने के पश्चात् अब नौकरी में हैं। पिता, माँ का अपमान करने, उन्हें तिरस्कृत करने का कोई भी मौका हाथ से नहीं जाने देते हैं। माँ की सहनशक्ति का मैं कायल हूँ और कितनी ही बार माँ की तरफ से पिता से भिड़ भी जाता हूँ। पिता अब थोड़े से नरम पड़ने लगे हैं; लेकिन नरम पड़ने के साथ–साथ अब वे माँ पर शक भी करने लगे हैं। शक, वह भी इस उम्र में, मैं खून का घूँट पीकर रह जाता हूँ, पिता माँ की जासूसी करने, उनकी नाकेबंदी करने और उन्हें अनावश्यक ताने देने लगते हैं। माँ के लिए सम्मान और पिता के प्रति विद्रोह ने मुझे कमजोर बना दिया है।

ऑफिस से लौटने के बाद माँ ही मेरा संसार होती है। पिता से मैं आवश्यक बात ही करता हूँ। दूरियाँ विद्रोह का आगाज हैं।

एक दिन पिता ने कहा कि वे एक पार्टी में जा रहे हैं और मैं भी उनके साथ जाऊँ। मैंने कहा भी कि मेरा उनके साथ जाना औचित्यपूर्ण नहीं है। ऐसी जगहों पर वे माँ के साथ जाया करें। तो वे मुझ पर गुर्राकर आए, ''इसे ले जाऊँ अपने साथ। है ये इस लायक। डीएसपी की वाइफ होकर भी जरा–सा शऊर नहीं है। नाक नीची नहीं करवानी मुझे। तुम जल्दी से तैयार हो जाओ और चलो। मुझे ज्यादा देर तक इंतजार करना अच्छा नहीं लगता।''

माँ ने मुझे समझाया, ''बेटा जिद नहीं करते। चले जाओ।'' पिता को तो मना करता, लेकिन मेरी माँ तो मेरे लिए सब कुछ है। माँ की बात मैंने मान ली थी।

मैं पिता के साथ पार्टी में चला गया था। पिता मुझे बड़े गर्व से मिलवाते रहे सभी से। ''बेटा है मेरा। इंडिया इंटरनेशनल में चीफ मैनेजर है। कंपनी, विदेश भेज रही थी, मैंने ही मना कर दिया। भई, अकेला बेटा है, कैसे जाने देता। अब बेगम को तो कोई अकल है नहीं। इसी से बात कर लेता हूँ, तो मन हल्का हो जाता है।''

पिता मेरी तारीफ कर रहे थे, लेकिन मेरी माँ के लिए इस तरह के शब्द मुझे अंदर तक चीर रहे थे। सो मैंने उनको कहा था, ''पापा मुझे यहाँ अच्छा नहीं लग रहा। थोड़ी देर के लिए बाहर जाना चाहता हूँ। अजीब–सी घुटन हो रही है।''

''ठीक है, लेकिन जल्दी ही वापिस आ जाना। अभी कुछ लोग और आनेवाले हैं, जिनसे आपको मिलवाना है। कहते हुए वे पार्टी में मस्त हो गए थे।

मैं बाहर आया तो थोड़ा अच्छा लगा। माँ याद आने लगी। थोड़ी देर बाद अंदर गया, तो पिता एक अधेड़ औरत की कमर में हाथ डाले उसके माथे पर आयी लटों को सुलझाने में जुटे थे। उस औरत को भी शायद अच्छा लग रहा था। मैंने देखा तो आग बबूला हो गया था मैं। काश मेरी माँ के साथ भी ऐसे ही रहा करें।

''पापा मैं घर जाऊँगा। मुझे कुछ ठीक नहीं लग रहा।'' पिता थोड़े तो नाराज हुए, फिर सहज होकर बोले, ''यहीं रुकते तो अच्छा लगता। चलो कोई बात नहीं। तुम गाड़ी ले जाओ। अपने लिए मैं ऑफिस से गाड़ी मँगवा लूँगा।''

मैं घर लौट आया था। घर के बाहर का दरवाजा खुला था। सो मैं अंदर घुस आया। ड्राइंग रूम में किसी के जूते रखे थे। सेंटर टेबुल पर रिस्टवाच रखी थी और माँ, पिता के बेडरूम से माँ की खिलखिलाने की आवाजें आ रही थीं। दूसरी ओर शांति थी। हाँ, बाहर की ओर सिगरेट के धुएँ के छल्ले लहरा रहे थे।

मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि जिस माँ की मैं पूजा करता रहा। देवी मानता रहा। मेरी वहीं माँ। हे भगवान्। एक पल
के लिए पिता पर तरस आ गया था।

मैं बाहर की ओर आ गया और लगभग चीखा था, 'मम्मा'!

मेरी आवाज सुनकर माँ भागती हुई बाहर आयी थी। माँ के सिर पर साड़ी का पल्लू नहीं था, लेकिन चेहरे पर खुशी थी और आँखों में चमक। माँ की खुशी सँभाले नहीं सँभल रही थी।
''अंदर कौन है? किसके साथ आप गुल....छर्रे...।' मैं उनका बेटा न होकर शायद अब एक पुरुष था।

माँ कोई जबाव देती, तब तक मंझले मामा, माँ के कमरे से बाहर आ गए थे। सिगरेट उनके हाथ में अब भी थी। वे चेन स्मोकर हैं।

मैं सन्न रह गया था, मानो किसी ने मेरा सब कुछ लूट लिया हो।
'अरे तुम आए हो'। मंझले मामा के ये शब्द तक मैं न सुन पाया था।
माँ अंदर चली गई थी। मैं हारे हुए जुआरी की तरह वहीं सोफे में धँस गया था। तभी बाहर से पापा की गाड़ी की आवाज आयी थी। पापा कब अंदर आ गए थे, मैं जान ही नहीं पाया।
पापा ने आते ही पूछा था, 'तेरी माँ कहाँ है?'

और माँ...माँ, छोटेवाला सूटकेस लिए ड्राइंग रूम में खड़ी थी और मंझले मामा से कह रही थी–
'चलो भइया!'
पिता स्तब्ध थे और मैं सन्न।
'कहां जा रही हो?' पिता ने अपने वही हिटलरी अंदाज में पूछा था।
मां ने पहली बार पिता की अनसुनी की थी।

मैं, माँ के पैर पकड़े भरी–भरी आँखों से, उनसे क्षमा माँग रहा था, 'मम्मा प्लीज रूक जाओ'।

'किसके लिए?' माँ ने सिर्फ इतना ही पूछा था और एक झटके से घर से बाहर निकल गई थीं। मंझले मामा अपने जूते और रिस्टवाच पहनते ही रह गए थे।

कहानी

ख्वाबों के ठोर

निशा भास्कर
नयी दिल्ली

''माँ! आखिरकार सपने भी सच होते हैं ना।'' कावेरी ने मासूमियत से कहा।
हाँ बेटे, पर आखिरकार सपने होते तो सपने ही हैं। वह हमारे अवचेतन में उत्पन्न होकर वहीं खत्म भी हो जाते हैं। सपनों से जीवन थोड़े चलता है। जिस तरह हम जी रहे होते हैं, वही सच होता है बेटा।
''तो क्या हमें अपने जीवन से नींद को हटा देना चाहिए?''
अरे। क्या पगली की तरह बातें कर रही है। यदि नींद हट जाएगी, तो हम सब पागल हो जाएंगे। नींद तो सभी प्राणियों के लिए जरूरी है। सुमित्रा जी अपनी सफेद धोती से हाथ पोंछती हुई बोली।
कावेरी अपनी माँ की गहरी झील–सी आँखों में झाँक कर बोली। ''माँ आपकी आँखें इतनी गहरी और काली है। कहते हैं की आँखें जितनी गहरी और काली होती है। उनके सपने उतने ही खूबसूरत और सच होते हैं।''
''यह सब कहाँ से सिखती हो तुम?''
जब पापा थे तो हमारे साथ दादाजी और दादी माँ भी थी। एक दिन दादी माँ ने मेरी आँखें देखकर ये बात कहीं थी। ''तेरी आँखें बिल्कुल तेरी माँ की तरह सुंदर है।'' बातें बतलाते हुए कावेरी के गालों का रंग सिंदूरी सुर्ख हो गए थे।
सुमित्रा जी ने बेटी की बलाएँ लेकर उसे आगोश में भर लिया। विगत चार वर्ष पहले की घटना याद कर वह थरथराई आवाज में बोली–यह सच नहीं है।
उस दिन उनकी तबीयत कुछ ढीली थी। दोरस मौसम की वजह से सिर दर्द और जुकाम के साथ हल्का फीवर भी लग रहा था। रमन ने कहा–सुमित्रा, तुम आराम करो। मैं आज खुद सबके लिए ब्रेकफास्ट बनाऊँगा।
माँ, पिताजी की भी चिंता मत करो। कावेरी तब आठवीं क्लास में थी। वह अपना काम खुद से कर लेती थी। उसे स्कूल भेज कर रमन ऑफिस चले गए थे। रोज की तरह सुमित्रा पाँच बजे सुबह नहीं उठ सकीं। शरीर में हरारत की वजह से आँखें झपक गईं और वह सपनों की नगरी में सैर करने लगी थी।
नारियल और खजूर के वृक्षों से घिरा दूर–दूर तक चमचमाता समुद्र का रेतीला तट, लहरों में खेलते कावेरी और सुमित्रा के संग रमन, नारंगी जैसा उगता सूरज अहा! कितना सुख सब कुछ अद्‌भुत लग रहा था। कई जोड़ों की खिलखिलाहट लहरों में घुल–मिल रही थी।
अचानक आनंद की परिसीमा कहीं खो गई। सामने काले–काले चट्टान किसी बृहदाकार असुर की तरह खड़े थे। चट्टानों के बीच से रास्ता ढूँढने की कोशिश में रमन को लहूलुहान होकर गिरते देख सुमित्रा की नींद टूट गई। उसका पूरा शरीर पसीने से लथपथ था। कंठ जैसे सूख गए थे। उसके मुँह से घुट्टी–घुट्टी–सी चीख निकल गई।
'रमन..!'' कावेरी ने चौक कर कहा।
''अरे माँ, क्या हुआ? आप इतनी घबराई हुई क्यों है?'' थोड़ी देर उन्हें देखती रही, फिर बोली।
''आपकी बात सच है। सपने तो सपने ही होते हैं।'' कहकर कावेरी ने खुद को सुमित्रा जी से मुक्त करवाया।
''माँ! पता है आपको हम एक साथ तीन जीवन जीते हैं।''
''तीन जीवन एक साथ, क्या कहती हो तुम? कुछ भी...'' सुमित्रा जी बेजान हँसी–हँसकर बोली–''मैं देख रही हूँ। तुम्हें कॉलेज जाते हुए अभी जुम्मे–जुम्मे चार दिन ही हुए हैं। पर तेरी बातें और ख्यालात बदलने लगी है।''
अपनी गुलाबी कपोलों को सिकुड़ कर बुजुर्गों जैसी चिंतित मुद्रा बनाती हुई कावेरी ने कहा। मैं अपनी फेवरेट सब्जेक्ट वनिरोलॉजी में ऑनर्स कर रही हैं। हमारे प्रोफेसर मिस्टर ह्वमेन कहते हैं–
''आमतौर पर हम एक साथ तीन जीवन जीते हैं। जैसे अभी हम हैं, दूसरे जब नींद में होते हैं और तीसरा जब हम चेतन और अचेतन को एकाकार कर पाते हैं।''
मुझे रोज सपने आते हैं–कभी अच्छे, कभी बुरे। मैं उन सपनों को जानना चाहती हूँ। इसीलिए मुझे रात पसंद है, ताकि मैं सोने के बाद दूसरी दुनिया की सैर कर सकूँ। सुमित्रा जी बेटी की मासूमियत भरी बातों को सुनकर बोती।
ठीक कहती हो। सपने हमारे जीवन के अंग है। इसकी सबसे बड़ी खासियत, पता है क्या है?
प्लीज, बताइए ना। माँ आपको भी सपने देखना अच्छा लगता है ना?
हाँ, बहुत अच्छे लगते थे, किंतु अब नहीं। उस भयानकता के बाद से जब तुम्हारे पापा सड़क दुर्घटना में चल बसे और हम बेसहारा हो गए। तुम्हारे दादा–दादी यह कहकर गाँव चले गए कि हमसे जवान विधवा बहू का चेहरा नहीं देखा जाता है। सुमित्रा जी के आँखों से झरझर आँसू बरसने लगे थे।
आपको पहले से कुछ महसूस तो हो रहा होगा न माँ। मेरा मतलब... कावेरी ने जिज्ञासुपन से पूछा।
सुमित्रा जी की मस्तिष्क में उस सुबह की यादें चलचित्र की तरह नाचने लगीं। उस दिन रमन को तीन बार फोन करके जल्दी घर आने के लिए कहा था। साथ में हिदायतें भी दी थी। गाड़ी ठीक से चलाना रमन।
रमन हँसकर बोले थे– ''सुमित्रा तबीयत तुम्हारी खराब थी सुबह, मेरी नहीं। तुम आज इतना चिंता क्यों कर रही हो?''
माँ को ख्यालों में खोई देखकर कावेरी बोली–''आप कुछ खास बातें बताने वाली थी।''
''हाँ, यही कि अचेतन मन में कल्पनाशीलता की शक्ति अधिक होती है। जिसका उपयोग हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कर सकते हैं। हमारी नींद और जागरण का जो संधिकाल होता है। वह हमारे सपनों को प्रभावित करता है।''
''ओ माँ! आपको तो हमारे कॉलेज में प्रोफेसर होना चाहिए था। क्या आप सपनों को कोडिंग करना जानती हैं?'' रहस्यमयी अंदाज में कावेरी ने पूछा।
''कोडिंग यह क्या होता है?'' उनकी गहरी आँखें विस्मय से फटी हुई थी।
''कोडिंग मतलब सपनों को जीवन से संबंधित करके देखना, मतलब लाइफ से रिलेट करना।''
सुमित्रा जी कुछ समझती हुई सी बोली–''हाँ, बड़े–बुजुर्गों के अनुभव के आधार पर सपनों के परिणाम लोग बताते हैं। जैसे सपनों में सोने का आभूषण मिलना, दरवाजे पर गौ माता का दिखना आदि शुभ परिणाम का द्योतक है।''
अच्छा कावेरी खोई–खोई–सी बोली–जैसे वह खुद किसी सपने में सैर करने लगी है। वह एक विशाल भवन से बाहर निकल रही है। मधुर संगीत की अस्पष्ट धुन सुनाई पड़ रही है। संग में उसकी पक्की सहेली सविता सोलह शृंगार से सज्जित चल रही है। वहीं राजसी पहनावे में दो दिव्य पुरुष भी उनके साथ–साथ चल रहे हैं। वह उन्हें पहचानती नहीं है; लेकिन अपनत्व का बोध हो रहा है। ऊँचे भवन की सीढ़ियाँ गोलाकार रंग–बिरंगे पत्थरों से निर्मित है। कावेरी के संग चल रहे सभी लोग उसका ध्यान रख रहे हैं। सीढ़ियाँ उतरकर वह एक फलों से लदे बाग में प्रविष्ट करती है। वह कच्ची लंबी सड़क के किनारे कोमल हरी दूब पर चलती हुई अति प्रसन्न हो रही है। वह सीधी राह आगे चलकर नब्बे डिग्री का कोण बनाती हुई दाहिने हाथ की ओर मुड़ती है।

वहाँ उस कोने में एक विशाल हरा–भरा वृक्ष है। जिसके तने काफी मोटे हैं। उस वृक्ष को देखकर सविता कहती है–
''कावेरी तुम्हें कुछ कहना है, तो यहाँ कहो। यहाँ से तेरी बातें वह सुन लेगा।''
कावेरी आश्चर्यचकित होकर आसमान की ओर देखती है। वह उस सुंदरतम स्थान को नजरों में भरकर बोली–''तुम कैसे हो?''
आकाशवाणी के जैसा प्रत्युत्तर दसों दिशाओं में गुंजायमान होने लगा। ''मैं अच्छा हूँ।'' यह ध्वनि तरंग बनकर जैसे तैरने लगी थी। कावेरी ने पुनः प्रश्न दोहराया। फिर वही प्रत्युत्तर। उसने आनंदित होकर चारों ओर देखा। उस विशाल वृक्ष के तने से प्रत्युत्तर के साथ दिव्य रोशनी का प्रस्फुटन उसके हृदय को हर्ष और रोमांच से भर दिया। यह उसके लिए विस्मयकारी और सुखद क्षण था।
सविता जैसे पहले से यह जानती थी। इसीलिए उसने खुश होकर कावेरी से पूछा–''तुम्हें यह सब कैसा लगा?''
वाह! अद्‌भुत, अलौकिका!
सविता ने दाहिने हाथ से मुड़ती हुई सड़क की ओर इशारा की। कावेरी उसे विमुग्ध होकर देखती रही।
''वह सड़क रंग–बिरंगे जुगनुओं से सजी हुई, किसी दूसरी दुनिया की सैर कराती नजर आ रही थी। मानों आसमान के सारे तारे उतरकर उस राह को रोशन कर रहे हो। जहाँ से कावेरी को गुजरना है।''
वाह! अचानक से कावेरी के मुँह से निकला।
''अरे क्या हुआ?'' सुमित्रा जी ने उसे झिंझोड़कर कहा।
''क्या दिन में जगे–जगे ही सपने देखने लगी हो।''
उसके होठों पर मधुर मुस्कान बिखरी थी। जिसे देखकर सुमित्रा जी भी मुस्कुरा दी।

कविताएं

गौरी शंकर वैश्य विनम्र
117 आदिलनगर, विकासनगर
लखनऊ, मो.–9956087585

वर्षा की बूँदें

रेशम सी कोमल–कोमल हैं वर्षा की बूँदें
छूकर तो देखो, शीतल हैं वर्षा की बूँदें

खेल रहीं स्वच्छ गली में, आँगन में, छत पर
नन्हीं बिटिया–सी चंचल हैं वर्षा की बूँदें

प्यासी धरती अम्मा की वे प्यास बुझाती हैं
हिला रहीं धानी आँचल हैं, वर्षा की बूँदें

प्रेम से पौधों को सीचें, नहलाती धोती हैं
हर्ष मनातीं उछल–उछल हैं, वर्षा की बूँदें

नाच रही हैं हवा साथ ही अल्हड़–मस्ती में
बजा रहीं छम–छम पायल हैं, वर्षा की बूँदें

सुहावना मौसम साथी, आकर्षित करता है
घनीभूत छाए बदल हैं, वर्षा की बूँदें

गर्मी से अति त्रस्त प्रकृति, आकुल–व्याकुल सी थी
बना रहीं सुख से पागल हैं, वर्षा की बूँदें

मोती जैसी मूल्यवान हैं, अंजलि में भर लें
जीवन की उज्ज्वलतम कल हैं, वर्षा की बूँदे।

प्रिया देवांगन 'प्रियू'
राजिम, जिला–गरियाबंद छतीसगढ़

रिक्तता

चिड़ियों के कलरव से पहले, नयन सदा खुल जाते थे
भोर सूर्य के दर्शन पाकर, तन मन शक्ति जगाते थे

पुष्पों की जब मंद सुरभि भी, आँगन में मुस्काती थी
देख आपकी प्रेम प्रभा को, पूर्वा शोर मचाती थी

सूर्य तेज सा चमकीला मुख, सात्विक जीवन अपनाते
दया प्रेम संग मीठी बोली, हँसकर ही करते बातें

क्रोध न दिखता क्षणभर उनमें, काया थी निर्मल माटी
नेक कार्य कर नाम कमाए, छोड़ चले यह परिपाटी

लगता जब आनंदित जीवन, क्यों बाधा घिर आती है
हर्षित होता मन इक क्षण में, दूजा दुःख थमाती है

पिता बिना संसार अधूरा, सूना मेरा आँगन है
आगे बढ़ने का प्रयास है, किन्तु सतत विह्वल मन है

वही भोर है वही किरण पर, पात–पात हैं मुरझाए
बिना छुए हम चरण आपके, कैसे आगे बढ़ पाएँ।

कहानी

परिन्दे की बेकशी

देववंश दूबे
मो. 7879076271

जून का महीना, ऊपर से नवतपा।... उफ्फ, यह मौसम!..... पंखा–कूलर भी गर्मी से हाँफ रहे हैं। जो जहाँ है, वहीं त्रस्त है। वह अपनी गंजी और लुंगी शरीर से उतारकर उनका तकिया बनाता है और छत पर पहले से फैली खजूर की चटाई पर लेट जाता है। वातावरण में उमस अपनी जोर पर है। उसके खुले बदन को हवा ने जैसे ही छुआ कि उसकी रगों में एक ठंडी सिहरन दौड़ गयी।

आहह! आज की रात यहीं सोना अच्छा रहेगा, बल्कि पत्नी को भी बोल दूँगा... ''नहीं, नहीं। बेकार है उसे बोलना। जब भी बोलता हूँ, वह उल्टे मुझे ही समझाने लगती है.... आपको कुछ बुद्धि–उद्धि है कि नहीं। अगल–बगल की छतों पर कैसे–कैसे लोग सोते हैं..... क्या कहेंगे?.... औरत को बहुत कुछ सोचना पड़ता है।.. आपको तो पता है ना कि मकान मालिक भी कभी–कभी छत पर सोने चले जाते हैं।... फिर?... मर्द थोड़े हैं कि जैसे भी सोना हो, सो लिये!... ना बाबा। ना..... मेरा मुँह नोंच देगी वह। उसको समझाना यानी पहाड़ में सिर टकराना है। इसलिए उसकी जो मर्जी, वही करे। नीचे ही सोये वह, मुझे क्या... लेकिन आज तो मैं नीचे सोने से रहा। कमरे की उमस को झेलना आज मेरे बस में नहीं है.... बाप रे, बाप! पंखे चलते हैं तो लगता है, जैसे ड्रगन आग की लपटें छोड़ रहे हैं.....।''

दम निकाल देनेवाली उमस से उसे थोड़ी राहत अभी मिली ही थी कि माँ की बातों ने उसके दिमाग की नसों पर दबाव बनाना शुरू कर दिया। वह चटाई पर लेटे–लेटे शून्य में ताकने लगा ।..... पेट की भूख ने मुझे कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया है ..... परिन्दे भी शाम होते अपने घोंसलों में लौट आते हैं, लेकिन मैं?... अपनी स्थिति के बारे में सोचते–सोचते ही वह मायूस हो जाता है। फिर तनिक देर बाद खुद ही अपने आपको समझाने लगता है ..... आजकल घर में कहाँ किसी को दाल–रोटी मिलती है।

गाँव से जबसे माँ का फोन आया है, उसका मन माँ की ओर खींचा चला जा रहा है।..... माँ है न! महीना–पंद्रह में वह किसी–न–किसी से एकबार फोन लगवा ही लेती है।.... भैया–भाभी जो भी फोन लगाएँ, उनका हालचाल बहुत कम समय में ही पूरा हो जाता है, लेकिन माँ? उसकी बातचीत तो जल्दी ख़त्म ही नहीं होती है। और जब खत्म होने को होती है तो अंत में इतना जरूर पूछती है, ''कब आओगे?'' और उसके उत्तर में वह अनौपचारिक ढंग से कुछ–न–कुछ जवाब दे ही देता है।

उसे इस बार घर जरूर जाना चाहिए। इसलिए नहीं कि उसे घर गये बहुत दिन हो गये हैं, बल्कि इसलिए कि अब माँ कुछ महीनों से घुमा–फिराकर एक ही रट लगा रही है–''बेटा! साल में एकाध बार तो इधर आ जाया करो। तुमसे कुछ माँग थोड़ी रही है। बस तुम्हें देखने के लिए जी तरस जाता है।... ऐसी कौन–सी नौकरी है जो साल में भी तुम्हें छुट्टी नहीं मिलती?" माँ का खयाल आया नहीं कि उसकी आँखें भरने लगती हैं। वह जानता है. धीरे–धीरे वह घर–परिवार, नाते–रिश्तेदार से दूर होता जा रहा है..... आने–जाने से रिश्तों में जो मजबूती बनती है, वो फोन में कहाँ?... लेकिन वह करे भी तो क्या करे। आर्थिक तंगी ने उसे हिलना–डुलना तक बंद कर दिया है। वह किस–किस को बताये कि एक प्राइवेट फर्म में काम करने का मतलब क्या होता है, हड्डियाँ घिसती हैं तब कहीं दो जून की रोटियाँ नसीब होती हैं। प्रबंधन कमिटी का कहना है, कम्पनी घाटे में चल रही है। इसलिए उसका वेतन 4 साल पहले जितना था, आज भी उतना ही है। कम्पनी की नजर में न तो महँगाई बढ़ रही है, न ही उसकी जरूरतें। साहब की ऊपर से धौंस अलग–''काम करना है तो ठीक से करो, वरना दफा हो जाओ, काम करनेवालों की कमी नहीं है। एक जाएगा, दस आयेंगे।''

ऐसे तानाशाह के अंदर नौकरी करना भी तलवार की धार पर चलने जैसा है। हाथ से नौकरी चले जाने का खौफ उसके दिमाग से कभी हटता ही नहीं।

उसे घर गये एक–डेढ़ वर्ष बीतनेवाले हैं। जब कभी मन हुआ, स्वयं घर पर फोन लगा लिया और मन को तृप्त कर लिया। घर से कब फोन आएगा, इसका इंतजार नहीं करता। जिंदगी इसी तर्ज पर कट रही है उसकी। वह जमाना कोई और था जब दुनिया में मोबाइल नहीं आया था तब वह कॉलेज में पढ़ता था। पोस्ट कार्ड, लिफाफा, अंतर्देशीय पत्र ही रिश्तों को सँभालते थे। माँ खुशामद करके किसी से चिट्ठी लिखवाती थी। उसकी चिट्ठी एक बार में कभी पूरी नहीं होती थी। वह बार–बार पढ़वाती और सुनती और हर बार कुछ–न–कुछ नया समाचार और जुड़वाती। यही बात मेरे द्वारा भेजे गये पत्रों के साथ भी होता था। कई–कई बार किसी से पढ़वाना और सुनना उसकी आदत थी। वह अभी भी बताती है, उसे जब भी मुझे देखने की इच्छा होती, वह मेरे पुराने पत्रों में झाँक लिया करती। भेजा गया पत्र, पत्र नहीं, बल्कि 'मैं' होता था। मेरा हर पत्र उसके दिल के बहुत करीब हुआ करता था।

आसमान पूरा साफ, दूध का धुला लग रहा है। तारे हल्की लालिमा और पीलापन लिए थिरक रहे हैं। तारों की बस्तियों से गुजरते हुए उसका मन कई साल पीछे चला जाता है.....

मकान के आँगन में चारपाई पर बैठकर उसकी माँ उसे मालिश कर रही है और ध्रुव तारे और सप्त ऋषियों की कहानियाँ बड़ी चटकारें लेकर सुना रही है। आकाशगंगा माँ की नजर में धूल फाँकता एक रास्ता है, जिधर से स्वर्ग के मवेशी गुजरते हैं। अभी उसकी माँ के कंठ से श्रवण कुमार की कहानी सरक रही है। वह कहता है... ''बड़ा होकर मैं भी श्रवण कुमार बनूँगा, माँ।''

''हाँ बेटा! बुढ़ापे में तुम पर ही तो आसरा है। माँ भरे गले से कह रही हैं, बेटियाँ तो ससुराल चली जाएँगी। बुढ़ापे में अंधे की लाठी तो तुम ही रहोगे। खूब पढ़ना–लिखना और बड़ा होकर हमारे लिए अच्छी–अच्छी साड़ियाँ लाना।.....हाँ।'' माँ उस के गाल पर एक हल्की चिकोटी काट देती है।... ''मेरा सोना।'

आसमान से फिसलती उसकी नजर जमीन पर आ जाती है। वह अपने घर की दिशा में बड़ी कातर दृष्टि से देखने लग जाता है। माँ अभी शायद आँगन में खाट पर लेटी होगी और आकाश की ओर निहार रही होगी। उसके दिमाग से जैसे तरंगें निकलने लगती हैं.....

''मैं भूला नहीं हूँ, मगर यहाँ सब लोग तुम्हें खूब याद करते हैं। तुमसे मिलना भी चाहते हैं। मगर बस का किराया आजकल इतना बढ़ गया है कि सबका एक साथ गाँव आना संभव ही नहीं हो पा रहा है। महीने का राशन, मकान–किराया, बच्चों की फीस, तीज–त्यौहार, बीमारी.... क्या–क्या बताऊँ, माँ। कितना भी कंजूसी करो, बजट गड़बड़ा ही जाता है। अब तुम ही बताओ ना, कैसे करूँ, वेतन से कहाँ कुछ बचता है.... तुम्हें तो कई बार कह चुका हूँ कि तुम यहीं साथ रहा करो। अब बुढ़ापे में घर–गृहस्थी की चिंता क्या करनी, भैया तो गाँव पर हैं ही, देखेंगे खेती–बाड़ी। घर की चिंता में तुम्हारी ज़िंदगी घिस गयी। फिर अब काहे का हाय–हाय..... किस बात की अब चिंता।

उसका आत्मसंवाद अभी खत्म नहीं हुआ था कि एक अनसुनी आवाज उसके घर की दिशा से आती प्रतीत हुई.....

''नहीं बेटा! कैसे रहूँ, मन ही नहीं लगता वहाँ। यहाँ तो गाँव–घर में घूम–फिरकर मन हल्का कर लिया करती हूँ, पर वहाँ एक ही दर पर बैठे–बैठे जी अकुला जाता है। कैसे रहूँ, तुम ही कहो ना, बेटी–दामाद भी तो मिलने आते

रहते हैं।''

''ठीक बोल रही हो माँ।'' वह अपने अंतर्मन से स्वीकार करता है और छत से धीरे–धीरे उतरकर अपने कमरे में चला जाता है। सारे सदस्य सो रहे हैं। वह मोबाईल की रौशनी में आहिस्ता–आहिस्ता अटैची खोलकर एल्बम के पृष्ठ पलटने लगता है। माँ उसे कई जगह दिखती है। कहीं अकेली, कहीं परिवार के साथ। वह बहुत देर तक माँ का चेहरा निहारता रहता है। काफी समय तक घर के मोह–फाँस में जकड़े रहने के बाद वह मन–ही–मन निश्चय करता है कि कल शाम की गाड़ी से अकेला ही गाँव जरूर जाएगा।.... बीमारी का आवेदन–पत्र किसी के हाथ अपने दफ्तर भिजवा देगा और चलता बनेगा। प्रबंधन कमेटी को जो विचार करना होगा, करेगी। दुनिया में प्राइवेट नौकरी का अकाल नहीं है।

वह एल्बम को अटैची में रखकर पुनः छत पर आ जाता है। चटाई पर लेटे–लेटे आसमान की ओर देखता है जहाँ सब कुछ पहले जैसा था। केवल चाँद थोड़ा सरक चुका था। उसे एक कहानी याद आती है। माँ ने बताया था–चाँद और सूरज दो भाई थे। उन्हें एक बार कहीं से भोज का निमंत्रण मिला था। चाँद ने माँ के लिए छुपा कर तरह–तरह के व्यंजन लाए थे, लेकिन सूरज ने इस दिशा में कुछ सोचा ही नहीं। माँ कहती है–तभी से चाँद तृप्ति भाव के साथ शीतल बना रहता है और सूरज पश्चाताप की अग्नि में जलता रहता है..... आह! कितना प्यारा चाँद! वह चाँद को प्यार भरी नजरों से एकटक देखने लगता है।

चाँद को देखते–देखते वह चेतन से अवचेतन की अवस्था में जाने कब पहुँच चुका था, उसे इसका तनिक भी आभास नहीं हुआ।..... यह एक अलग दुनिया थी। वह था और सामने उसकी माँ थी। वह परेशानियाँ माँ को बता रहा है। माँ अपनी गोद में उसका सर रखकर धीरे–धीरे सहलाते हुए कह रही है, कोई बात नहीं बेटा। जब छुट्टी मिले, तभी आना। माँ का दिल है ना, मानता ही नहीं। कितने दिन भी साथ रहो, जिस दिन तुम्हारे जाने को होता है न, उस दिन सुबह से ही मन उदास हो जाता है। लगता है
कुछ बातचीत भी नहीं हुई और तुम जाने लगे। तुम्हें घर से जब कुछ दूर तक छोड़ने निकलती हूँ तो तुम्हें छोड़कर लौटने का मन ही नहीं होता। कुछ दूर तुम्हें छोड़कर लौटती हूँ तो क्या कहूँ (रोती हुई) तुम्हें बार–बार पलटकर देखती जाती हूँ..... जैसे–जैसे तुम आँखों से ओझल होते जाते हो, वैसे–वैसे मेरा आँचल भींगता जाता है। तुम्हारा जाना कहो कि फिर से तुम्हें देखने के लिए आँखें तरसने लगती है। मैं भी क्या करूँ! बेटा... दिन पहाड़–सा लगता है.... मेरी तुमसे कोई शिकायत नहीं है बेटा! मेरा भी तो अब चल–चलौती का बेरा है। पापा की तरह मेरी भी किसी दिन साँसें थम जाएगीं।''

माँ समझाती जा रही थी, वह सिसकता जा रहा था। तभी छत पर पत्नी आकर झिंझोड़ती है–''आज सोते रहेंगे क्या? देखिए तो सूरज एक बाँस ऊपर आ गया है। उठिए उठिए, जल्दी तैयार होइए। छुटका रात–भर बुखार से हाँफ रहा है, उसे डॉक्टर के पास ले चलना बहुत जरूरी है।''

पत्नी हवा के झोंके सरीखे आती है और वैसे ही चली जाती है। वह हिचकियाँ लेता हुआ अपनी भीगी–भीगी आँखों को खोलता है। पत्नी पर वह मन–ही–मन बहुत खीझता है, लेकिन कुछ बोल नहीं पाता है..... ''अब कहाँ गाँव जा सकूँगा।'' वह आर्द्र मन से अंदर–ही–अंदर विलाप करता जा रहा है..... ''सोचा था, सुबह किसी से पैसे का इंतजाम करके माँ से मिलने जरूर चला जाऊँगा। लेकिन अब!!... अब तो न माँ से मिलने जा सकूँगा और न ही वो सपनेवाली माँ की गोद नसीब हो सकेगी।''

वह अपने घुटनों पर अपना सिर टिकाये और हाथों से उसका घेरा बनाये चुपचाप छत पर बैठ गया।

कविताएं

महेश कुमार केशरी
मेघदूर मार्के फुसरो,
बोकारो–829144

मेरे भीतर तुम
देखो तुम मेरे भीतर से
मरती चली गई
और मुझे पता भी नहीं चला
ये बात मुझे अभी बहुत दुःख पहुँचा रही है
मैं सच कह रहा हूँ
रो दूँगा मैं इस बात पर किसी अबोध बच्चे की तरह
मैं नहीं चाहता तुम्हें भूलना
मैं रखना चाहता हूँ पूरी
दुनिया से छुपाकर तुम्हारी स्मृतियाँ
सचमुच मैं दुःखी हूँ
कि तुम मेरी स्मृतियों से लोप हो रही हो
मैं सच कह रहा हूँ
इधर सालों मैं दिन, दोपहर, सुबह, शाम
किसी ना किसी बहाने से तुम्हें
याद करता रहा हूँ
सच कहता हूँ
मैं, सूर्य, पृथ्वी, अग्नि, जल और तुम्हें साक्षी मानकर
पता नहीं तुम्हारा दिल किस मिट्टी का बना है
स्मृतियाँ, जिजीविषाएँ, प्रेम तुम्हारे लिए
ये सब बेमानी बातें हैं
लेकिन मैंने लिखे हैं तुम्हारे
लिए सर्दियों की दोपहर में बैठकर प्रेम–पत्र
उनींदी रातों को चौंक–चौंक कर जाग पड़ता हूँ
आँखें जल रहीं हैं
जैसे सालों से सोया नहीं!
मंजिल के बारे में कभी
सोचा ही नहीं
तुम्हें ढूँढ़ते–ढूँढ़ते सफर
होकर रह गया हूँ
इतना भागा हूँ तुम्हारे लिए
कि कभी मंजिल की सुध ही ना रही
मैं, संवेदनाओं का होकर रह गया
मैं बच्चे की तरह हूँ , मासूम
तुम्हें भूल ही नहीं पाता !
तुम मेरी स्मृतियों के तुँतुओं से
गुँथी हो
तुम, बँधी हो मेरी आत्मा की
शिराओं से!
दौड़ते–दौड़ते अब आत्मा भी थक गई है
माँ–बाप बूढ़े हो चुके हैं
कमाने–धमाने की सुध ले रहा हूँ
दवाओं और जरूरी खर्चों के लिए
तगादे होने लगे हैं ...
कब तक बैठा रहूँगा, तुम्हारी
स्मृतियों की खोह में!
मैं, भी दस से पाँच के काम पर चला जाता हूँ
कुछ पैसा कमाने जिम्मेदारियों का बोझ उठाने
तुम्हारे लिए लिखे प्रेमपत्र
अब पीले पड़ चुके हैं!
तुम्हारे लिए खरीदे गुलाब
अब खाद बन गए हैं!
मैं अब निकल आया हूँ
स्मृतियों के कमरे से
स्मृतियों की आत्मा पर
अब धूल पड़ चुकी है !

कहानी

विग्रहाश्रय

डॉ. रानु मुखर्जी

एक कटोरी में चिउड़ा लेकर उसमें थोड़ा पानी और चीनी मिलाकर उसे मसल रही थी। दाँत तो थे नहीं। हाथ ही दाँत का काम कर रहे थे। आज न जाने क्यों खाने का मन नहीं कर रहा था। जब सुबह सोकर उठी, तभी से जी कच्चा–सा हो रहा है। लगता है नींद भी पूरी नहीं हुई। पर कौन विश्वास करेगा? अभी नौ बजे ही तो उठे हैं। रात को भी ठीक आठ से नौ बजे के बीच वह सो जाती है।

सोना क्या? पड़ी रहती है। नींद तो जाने आँखों से कोसों दूर रहती है। लाख कोशिश करने पर ही दो तीन घंटे आँख लगती है। उसी में जो होता है वही। फिर सुबह बच्चों के स्कूल चले जाने के बाद ही वह उठती है। जल्दी उठकर वह सुधा के काम को बढ़ाना नहीं चाहती। जल्दी उठने का मतलब है, बाथरूम, चाय, फिर गरम पानी नहाने के लिए, फिर पूजा की सामग्री इकट्ठा करना, नाश्ता, फिर बैठने के लिए थोड़ा अवसर।

आज इसी अवसर को वह लम्बा खींच रही है। मसल– मसलकर हाथों का जोर भी कम हो गया है। पहले थोड़े ही समय में पूरी एक बड़ी कटोरी चिउड़ा मसलकर अपने खाने योग्य बना लेती थी।

''क्या हुआ माँ! देखकर लगता है खाने का मन नहीं है?'' सुधा ने पास आकर पूछा।

''नहीं बेटा! सचमुच आज खाने का मन नहीं कर रहा है'', अनमने भाव से मनोरमा ने उत्तर दिया।

घर के सभी लोग तथा पास–पड़ोस के सभी लोग उसे मणीमाँ के नाम से पुकारते हैं। यह उसके बेटे के कारण हुआ। उसे 'मणी' नाम से इतनी शर्म आती कि क्या कहना! परन्तु नहीं, सुरेन्द्र की जिद थी कि प्यार से पापा के रखे नाम से ही सभी उसे पुकारेंगे और वह भी तो पापा की देखादेखी, माँ को 'मणी, ओ मणी कहाँ हो?' कहकर ही पुकारता था। क्या पता, कब और कैसे 'मणी' के पीछे आँचल पकड़ता हुआ 'माँ' शब्द जुड़ गया।

यह पुकार सुनते ही उसके कानों में मिश्री की ढेली घुल जाती। आज उसके कान तरस गए हैं, इस पुकार को सुनने के लिए। सभी अपने काम में व्यस्त। किसी को भी मणीमाँ के लिए वक्त नहीं है।

सुबह से सब मशीन बन जाते हैं। उसे ऐसा दिखा– दिखाकर काम करते हैं कि देखो, ऐसे बैठे रहने से काम नहीं चलता। काम करना पड़ता है। हाथ तभी घूमता है, जब उसे घुमाने के लिए प्रयत्न किया जाए।

आज प्रायः महीने भर से सुरेन्द्र बाहर गया है। आजकल इसे टूर पर जाना कहते हैं। बहू सुबह–सुबह थक करके चाय का प्याला रखते हुए सुना गई थी कि सुरेन्द्र के टूर से वापस आने में अभी और कुछ दिन लगेंगे। कल ही रात को मणीमाँ के सोने के बाद ही उसका फोन आया था। माँ की तबियत की भी पूछ रहा था।

मणीमाँ के पेट में एक मरोड़–सा उठा। उसके मुँह का स्वाद भी कसैला हो गया। उसने चिउड़े को मसलना बन्द कर दिया। अब तो कटोरी की ओर नजर पड़ते ही उबकाई–सी आने लगी है। सुरेन्द्र के पिता जब जीवित थे, हर रोज सुबह घी में तली मैदे की गरम–गरम पूड़ियों के साथ सफेद आलू की रसेवाली सब्जी का नाश्ता करते। एक–एक दो–दो गरम पूड़ियों को एक बड़े थाल में सजाकर वह परोस आती और किसी का परोसना भी उन्हें अच्छा नहीं लगता था। दो–चार पूड़ियाँ खा लेने के बाद वह फिर दूसरी बार गरम पूड़ियाँ देने जाती और जब तक ओ तृप्त होकर 'आह' शब्द का उच्चारण नहीं करते, तब तक वह नहीं रुकती थी।

''मणी तुम्हारे हाथों की पूड़ियाँ तो मुँह में डालते ही गल जाती हैं। क्या गजब का हुनर है तुम्हारे हाथों में'' और मणी धन्य हो जाती। सुबह चार बजे से उठकर, नहा–धोकर, रसोई साफ करके, फिर मैदे को खुद गूँधकर लोई काटकर पूरी बनाने की तैयारी करना, आलू उबालकर सब्जी के लिए तैयार करना, बार–बार ऊपर जाकर नाश्ते का वक्त हुआ कि नहीं, देखकर आना... आदि–आदि, के जितने भी श्रम थे, सब सार्थक हो जाते। यह संतुष्ट होकर दूसरे काम के लिए चल देती। आज न ऐसी पूड़ी बनती है, न किसी का हाजमा इसे पचा सकता है।

चिउड़े की कटोरी को उसने कुर्सी के नीचे सरका दिया। फिर धीरे–धीरे दिवारों का सहारा लेकर उठ खड़ी हुई। एक यही दुःख है बुढ़ापे का। शरीर का हर जोड़ दुःखता रहता है। बैठो तो उठने में तकलीफ, उठो तो बैठने में तकलीफ। किसी प्रकार दीवार का सहारा लेकर वह खड़ी हुई। थोड़ी दूर चलने के बाद ऐंठन दूर हुई। दीवार से हाथ हटाते ही भरभरा कर चूने के साथ प्लास्टर भी झर गया। आवाज सुनकर वह कमरे से बाहर निकल लाई।

''माँ! देखकर जोर लगाया करो। पुराने घर में रहना है, तो सावधान रहना पड़ेगा। नहीं तो एक दिन हम सब खण्डहर के नीचे, मलबे में दबकर मर जाएँगे। क्या पता, आपके बेटे को इस खण्डहर से क्यों मोह है?'' वह अपनी विरक्ति व्यक्त करके चली गई।

यह भी बहुत बार सुरेन्द्र से कह चुकी है, ''तुम लोग आधे को तोड़कर अपना नया बना लो, मेरी जिन्दगी और कितनी बची है, मुझे यहीं रहने दो, फिर.....''

''माँ! हम सब एक साथ नये घर में रहेंगे, नहीं तो इस टूटे–फूटे घर में ही हम सब साथ रहेंगे। तुम्हें छोड़कर हम कैसे नये घर में रहेंगे भला?'' सुरेन्द्र माँ को समझाता है। उसके स्वर से तो लगता है कि माँ पूरे मकान को गिराकर नया बनाने की इजाजत देती तो अच्छा होता। पर साफ–साफ कुछ कह नहीं पाता था।

मणी कैसे इजाजत देती मकान गिराने के लिए? उसे तो चारों ओर सुरेन्द्र के दादा–दादी मुस्कुराते, बतियाते, घूमते नजर आते। सुरेन्द्र के पापा उसे हर कमरे में काम करते नजर आते। उस कोने के घर को वह कैसे भूल सकती है, वहीं पर तो वह बहू बनकर आई थी। लोगों की उत्सुक नजरों से घिरी बैठी थी और सभी की नजर बचाकर कभी–कभार सामने के कमरे की ओर भी देख लेती थी, जिसे उसकी सुहागरात के लिए फूलों से सजाया जा रहा था।

गाढ़ी बैंगनी रंग की साड़ी पहनकर जब वह उस कमरे में बैठी थी, तो सबके निकल जाने पर सुरेन्द्र के पापा ने कमरे में घुसने के पहले एक गुलाब के फूल को उसकी तरफ उछाल दिया था। फिर माँ की पुकार पर बाहर चले गए। थोड़ी देर बाद जब अंदर आए तो उनके हाथों में मखमल का एक सुंदर डिब्बा था। उसे खोलकर उसकी ओर बढ़ाते हुए वे मुस्कुरा रहे थे। डिब्बे में एक हीरे की अंगूठी चमचमा रही थी।

पिछले वर्ष जब पोती को इम्तहान में पहला नंबर आया, तो मणी ने उसे बुलाकर वह अंगूठी पहना दी। पोती ने मणी को चूम लिया, ''थैंक्स दादी'', तो वह शरमा गई। ''क्या करती है रे?'' छोड़ बेशरम कहीं की और वह लाज से दोहरी हो गई।

शादी के बाद सुरेन्द्र के पापा अक्सर उसके लिए उपहार खरीदकर लाते, परंतु उसे सबसे अमूल्य तोहफा उनका फेंका हुआ गुलाब का फूल लगता, जिसे सुहाग–कक्ष में बैठी अपनी नवोढा पत्नी की तरफ उन्होंने उछाला था। एक मखमल के डिब्बे में उसने उसे सँभालकर रखा है। बरामदे से नीचे उतरते समय सीढ़ियों के बगल में एक चेयर पड़ी रहती थी। सुरेन्द्र के जन्म से पहले दोनों उस चेयर के पास बैठकर न जाने कितनी रात तक बतियाते रहते। उस चेयर का कहीं नामोनिशान नहीं है; परंतु आज भी जब वह

उदास हो जाती है, तो उसी जगह पर जाकर बैठ जाती है। हवा जब उसके कपोलों को छूकर गुजरती है, तो उसे अपने पति के मादक स्पर्श की याद आती है और वह अपने सारे गम भूल जाती है।

बरामदे से संलग्न वह छोटा–सा बगीचा जो ठीक उसके कमरे के सामने ही है, हर रोज सुबह वह नहा–धोकर राधा–गोविंद के लिए फूल चुनने जाती, तो कितनी बार उसने देखा सुरेन्द्र के पापा उसे निर्निमेष निहार रहे हैं।

''क्या देख रहे हैं?'' पूछने पर कहते–

''तुम फूल तोड़ती हुई कैसी लगती हो जानती हो?''

''कैसी लगती हूँ?''

''मेरी राधा जैसी...।''

''धत्...'' कहकर वह भाग आई थी और उस रात मोगरे की एक सुंदर माला गूंथकर पहले ही कमरे में छुपा आई थी। एक पुस्तक पढ़ने का बहाना करके वह पति की राह देख रही थी। सुरेन्द्र के पापा के आते ही उसका दिल जोर–जोर से धड़कने लगा। पास आकर खड़े होते ही बह उठकर बैठ गई।

''उठ क्यों गई?'' उन्होंने पूछा।

''आपको एक चीज देना है।''

''तो दो न....।''

ऐसे नहीं। पहले आँख बंद कीजिए।

और अचानक मोगरे की खुशबू से पूरा कमरा महक उठा। माला उनके गले में झूल गई।

''ये किसलिए?''

''मेरे गोविन्द के लिए।''

और उनके कदमों में झुक गई।

पलकों पर बिठाकर रखते थे अपनी मणी को। कभी किसी को कोई शिकायत का मौका भी नहीं दिया था मणी ने। सबकी दिलोजान से सेवा में जुटी रहती, मणी।

उस बड़े से आँगन में से मणी ने अपनी सास–ससुर, ननद और अंत में अपने पति को श्मशान की ओर यात्रा करते देखा था। उस दिन एक बूँद भी नहीं टपकी थी उसकी आँखों से। अभिमान में मन भर उठा था। ''साथ निभाने का वादा करके पहले ही चल दिए? किसके भरोसे छोड़कर जा रहे हो?''

अब तो आँखों से भी धुँधला दिखाई देता है। बहुत दिन से बहू ताने मार रही है, ''टूटे में ही जिंदगी गुजर गई, तो क्या बुढ़ापे में महलों में रहेंगे? बहू की माँ आकर उस दिन सुना गई, ''बेटी, जब तक बरगद का पेड़ है, तब तक उसके नीचे कुछ नहीं पनप सकता है।''

वह अपने को नए वातावरण में डालने की कोशिश कर रही है। कल रात–भर सोचा उसने। एक ही तो बेटा है, क्या वह उसे सुखी नहीं देखना चाहती? कब तक 'राधागोविंद' की लीला भूमि को जकड़कर पड़ी रहेगी।

वह अपने कमरे में आकर बिस्तर पर लेट जाती है। बहू को बुलाती है....''बहू! सुरेन्द्र को खबर दे दो....

''क्यों माँ! तबियत ठीक नहीं?''

''नहीं बेटी, कुछ कहना है।''

दूसरे दिन शाम तक सुरेन्द्र माँ के पास पहुँच जाता है। उसे अरजेन्ट टेलीग्राम मिला–''क्या हुआ माँ? मैं तो घबरा गया, क्यों बुलाया?''

''बेटा, मैं यह मकान तुम्हारे नाम कर देना चाहती हूँ। तुम इसे तोड़कर नया बनवा लो।''

''माँ! क्या किसी ने कुछ.....''

''नहीं बेटा! किसी ने कुछ नहीं कहा। कोई कहने से भला मैं क्यों सुनने वाली। लीना की शादी भी तो करनी है, वो क्या इस टूटे मकान से होगी? जल्दी कर बेटा, मैं देखकर जाना चाहती हूँ।''

किसी ने नहीं जाना, कब निकले छोड़कर, लीना ने दादी की आँखों में भर आए पानी को देख लिया था। एक वही तो है माँ–बाप और दादी की आँखों का तारा। लीना एक प्रोजेक्ट को लेकर बहुत चिंतित थी। उसने बड़ी मेहनत से उसे बनाया था। उसकी इच्छा थी विदेश जाकर उस पर काम करे। स्वीकृति के लिए भेजा भी है। जितना सोचा था, उससे थोड़ा ज्यादा ही खर्चा आएगा। उसने दादी से कह दिया था, अगर मेरा प्रोजेक्ट स्वीकृत हो गया, तो दो साल तक मैं शादी नहीं करूँगी। फिर वापस आने पर तो तुम जो कहोगी, वही करूँगी। वादा रहा।

एक साथ सब कुछ हो रहा था। मणीमाँ चाहती थी–लीना इस नए घर में अपनी पसंद का कमरा बनवा ले और उसकी यही इच्छा थी कि उसके कमरे के पास ही वह अपना कमरा बनवाएगी। कुछ समय से वह उसी में (लीना में) अपनी प्रतिछवि देख रही है। वही तेज नैन–नक्श, वहीं दूसरों को समझकर काम करने की भावना, हर काम में एक व्यवस्था, देख–देखकर तो वह निहाल हो जाती। एक आधार बना लिया था मणीमाँ ने लीना को। कॉलेज से वापस आकर, ''मणीमाँ! जानती हो आज क्या हुआ? आज प्रोफेसर साहब ने मेरे प्रोजेक्ट की तारीफ की, जो तारीफ की उसे क्या कहूँ। कहा विदेश में तो इस प्रोजेक्ट को इतना महत्त्व दिया जाएगा कि पैसों की कोई तकलीफ नहीं होगी, फिर भी मणीमाँ, अगर मेरे प्लान के मुताबिक और अधिक समय तक रुकना पड़े, तो मैं अपनी शादी की पूरी खरीददारी वहीं से करना चाहती हूँ।''

''तो कर ना....किसने रोका है।''

''पापा ने तो एक पैसा भी देने से इन्कार कर दिया है। कहते हैं तुम्हारे जाने की तैयारी में ही तुम्हारे दहेज के आधे से अधिक पैसे खर्च हो रहे हैं, मैं और एक पैसा भी नहीं दूँगा। यहाँ भी तो सब कुछ देखना है।''

''तू चिंता न कर बेटा। तेरे बाप ने तो कभी सही फैसला लिया ही नहीं। उसके लिए सही ढंग से निर्णय लेना मुश्किल है। दूसरे की बातों में बड़ी जल्दी आ जाता है, नहीं तो इतना पढ़ा–लिखा आदमी निर्णय लेने में इतनी देर करता है क्या?''

''फिर मणीमाँ, पैसे के बिना यह सब कैसे होगा?''

''मैं दूँगी न तुझे।''

''मणीमाँ! तुम? तुम्हारे पास कहाँ से आया?''

''तेरे दादा का है बेटा... उनका यह इतना बड़ा मकान टूटा पड़ा है, इसका क्या होगा? तेरी शादी के बाद तो तेरे मम्मी–पापा ही रह जाएँगे। अकेले इतने बड़े मकान को सँभालना आसान नहीं है, इसलिए मैंने तय किया है कि इसे तोड़कर कुछ हिस्से को नया बना लें और कुछ हिस्से में राधा–गोविंद का बड़ा–सा मंदिर। क्यों ठीक है न?''

''मणीमाँ! मार्वेलस, यू आर ग्रेट दादी! तुम्हारा दिन सचमुच बहुत अच्छा है। दादाजी ने सोच–समझकर ही तुम्हें मणी नाम से अभिहित किया है।''

''बेचकर तो बहुत पैसा मिलेगा। बाकी पूरा पैसा तेरा। बस, अब तो पैसे का किस्सा खत्म। क्यों...?

लीना ने दादी को गोद में उठा लिया। एक चक्कर, दो चकर और फिर बिस्तर पर बैठा दिया। ''तुम्हारा दिमाग फैन्टास्टिक काम करता है दादी। काश! तुम भी मेरे साथ चल सकती। घर का काम तुम सँभालती और मैं पूरा समय प्रोजेक्ट पर काम करती तो और भी जल्दी सब कुछ हो जाता। खैर, तुम चिंता मत करो। मैं सब कुछ जल्दी खत्म करके यहाँ तुम्हारे पास चली आऊँगी। क्यों ठीक है ना.....''

''तू जल्दी आ जाना बेटी। मेरी इन बूढ़ी हड्डियों में और अधिक दम नहीं है। क्या जाने कब भरभरा कर गिर जाएँ और अंदर का पंछी उड़ जाए। मैं तो तेरे आने के बाद ही नए घर में कदम रखूँगी, तेरे साथ। चाहे जो कुछ भी हो जाए। ये बात

तू गाँठ बाँध ले बेटी....''
''ठीक है मणीमाँ! तुम ज्यादा चिंता मत करो। दो वर्ष यूँ बीत जाएँगे। तुम्हें तो मालूम भी नहीं पड़ेगा, कब लीना गई और कब आई।''
''इस बुढ़िया का ख्याल करके वहाँ की लपर–झपर से दूर रहकर केवल अपना काम करना समझी?''
और लीना हँसते–हँसते दोहरी हो गई। पलक झपकते ही सब कुछ हो गया। लीना विदेश चली गई। घर में अकेली मणी को छोड़ा नहीं जा सकता, इसलिए एक वृद्धाश्रम में उसकी व्यवस्था हो गई, क्योंकि आजकल काम के सिलसिले में बहू को भी शहर से बाहर जाना पड़ता था और सुरेन्द्र का टूर तो अपनी जगह पर था।
वृद्धाश्रम में मणी को एक नया संसार मिला। जितने लोग, उनकी उतनी मुश्किलें, उतनी तकलीफें। कुछ वृद्धाएँ तो ऐसी भी. जिनके घरवाले उन्हें कभी देखने भी नहीं आते थे। कुछ अपनी सुनाते, कुछ उनकी सुनते हुए दिन गुजार रही थी। मणी को कभी–कभार सुरेन्द्र आकर उन्हें बाहर घुमाने ले जाता।
कितनी बार सुरेन्द्र से कहा–''नए घर को एक बार देखने को मन करता है'', तो सुरेन्द्र हँसकर टाल देता।
''बहुत धूल और गंदगी से वह जगह भरी है, चारों तरफ ईंट और सिमेन्ट ही देखने को मिलेगा। तुम्हें इसमें कुछ समझ में नहीं आएगा मणीमाँ। बन जाने दो, फिर तुम्हें दिखाऊँगा। अभी तो मलबे का ढेर है मात्र।''

लीना की चिट्ठी बराबर आती रहती। उसने उनके वृद्धाश्रम में आकर रहने का काफी विरोध किया था। क्या कोई अपने घर में अकेला नहीं रह सकता? पर नहीं, आजकल मणीमाँ को दिल की बीमारी की शिकायत हो गई है। ऐसे मरीज के लिए अकेले रहना ठीक नहीं। समय पर दवाई, खाना भी मिलना चाहिए। काफी समझा–बुझाकर मणी ने लीना को चिट्ठी लिखी थी; परंतु कहीं एक तार था, जो बार–बार टूट रहा था। चाहकर भी मणी उसे जोड़ नहीं पा रही थी। कहीं कुछ गलत हुआ था और हो रहा है। जो भी हो, उसे अपने राधा–गोविंद का ही सहारा है। उसके अंदर की बात तो वही जानता है।

इन्सान जैसा भी हो, उसके अंदर का भगवान एक ही तरह का होता है। मणी ने इसी बात की गाँठ बाँध ली थी। हर किसी पर वह भरोसा करती, विश्वास करती, दिल खोलकर सहायता करती। उसके इसी गुण के कारण आश्रम के सभी लोग उसे अपना हमदर्द मानते। कभी भी कहीं से भी किसी के घर से कोई बुरा समाचार आता, तो मणी तुरंत उसके सिरहाने पहुँच जाती। समझाती, खुद रोती भी, उसके साथ और उसके दुःख को बाँटकर फिर शांत होती।

शामला दीदी की ही बात को लो ना। आज इतवार है। कल शनिवार के दिन बेटा–बहू अपने तीन महीने के पोते को लेकर उसे दिखाने आए थे, तो वह जाने को ही तैयार नहीं। ''जिन्हें मेरी कदर नहीं, उनके सामने क्यों जाऊँ?'' तीन महीने पहले पोती हुई है, घर में लक्ष्मी आई है और आज दिखाने आए हैं? मेरी कोई कदर नहीं उनको, तो मैं क्यों मान रखूँ। मेरा आशीर्वाद क्या काम आनेवाला है?"

शामलादी एक इन्सान को अपना मान रखने के लिए बहुत कुछ कुरबान करना पड़ता है। जब तुम्हारा काम हो गया है, तो तुम्हें अपनी जगह खाली कर देनी चाहिए थी। पलंग के एक कोने में ही तो पड़े रहना है, चाहे वह नीचे का कमरा हो वा ऊपर का, बड़ा हो या छोटा। कोई निकाले इसके पहले ही घर की जरूरतों को समझकर अपनी गद्दी छोड़ दी जाए, तो दोनों पलड़े बराबर रहते हैं। मान तो इसी में रहता है शामलादी! काहे 'निकाल दिया, निकाल दिया' कहकर उनको कोस रही हो। हर किसी को रहने के लिए जगह चाहिए न और तुम हो कि रूठकर यहाँ चली आई।'' मणीमाँ ने समझाते हुए कहा, तो आँखों से झरझर बहते आँसुओं को रोककर, वह उठकर अपनी पोती को देखने चली गई। कभी किसी को मणीमाँ गलत सलाह नहीं देती।

उस दिन के बाद से फिर कभी घर देखने की जिद नहीं की मणीमाँ ने। उसे लगा एकदम लीना के साथ ही वह नए मकान में जाएगी।

लीना के वापस आने के दिन करीब आ रहे थे। बेटे–बहू ने आकर खबर दी कि एक लड़का देखा है, अच्छे खानदान का है, पढ़ा–लिखा भी खूब है। तो मणीमाँ ने कहा, ''जुबान किसी को मत देना, बेटी को आने दो। उससे बात करके तय करना।'' कैसे दो वर्ष बीत गए मणीमाँ को पता ही नहीं चला। कहाँ उसने सोचा था, एक दिन भी उसे घर से निकलकर काटना मुश्किल होगा। आज दो वर्ष पूरे होने को आ गए।

लीना ने आते ही मणीमाँ को घर लाने के लिए हल्ला मचा दिया। ढेर सारा सामान बाँधकर लाई थी वह। पैसे भी जितने उसे चाहिये, मणीमाँ ने अपने वादे के मुताबिक उसे भिजवा दिये थे।

सुबह पूजा के आसन में बैठते ही राधा–गोविंद के विग्रह के साथ–साथ लीना का चेहरा भी उनके मानसपटल पर बारबार झाँक रहा था। उन्हें बड़ी बेसब्री से लीना का इंतजार था। शाम होते ही कूदती दौड़ती लीना मणीमाँ पुकारती वृद्धाश्रम के सबसे कोने वाले कमरे में धड़धड़ाती घुस आई। आते ही मणीमाँ को गोद में उठाकर दो चक्कर घूम गई।
''बाबा, कितनी बदल गई हो मणीमाँ। एक नई चिकनाहट तुम्हारे चेहरे पर तैर रही है, जो घर में नहीं थी।''
''क्यों न हो, हम सभी एक साथ मिलकर यहाँ अपना दुःख बाँटकर सुख से रहती हैं, इसमें हमारी मणी तो सबका भला करती है। सबसे कर्मठ वृद्धा है वह यहाँ की। अब तुम उन्हें हमसे छीन लेने आई हो।'' आश्रम की एक वृद्धा ने कहा तो लीना ने देखा उनको घेर कर बहुत लोग खड़े हैं।
''मणीमाँ, तुम तो यहाँ आकर फेमस हो गई हो क्यों? चलो सामान कहाँ है?'' लीना ने जल्दी मचाई।
''हम लेकर आते हैं मणीमाँ को। आजकल सीढ़ी से उतरने में जरा तकलीफ होती है, आप आगे जाएँ, हम पीछे–पीछे आते हैं।'' एक वृद्धा ने कहा।
सचमुच मणीमाँ ने बहुत कठिनाई से सीढ़ी तय किया। नीना गाड़ी लेकर आई थी। उसमें सामान लादने के पश्चात् दादी को बैठाकर घर आ गई। नए मकान में पूजा दो दिन के बाद होनी थी, सो वे एक दूसरे मकान में रह रहे थे। सारी रात लीना दादी के साथ बकबक करती रही और दादी से यह भी कहा कि वह नौकरी करने के पश्चात् ही शादी करना चाहती है। दादी ने कोई अनिच्छा नहीं दिखाई। उसे तो राधा–गोविंद के मंदिर की चिंता थी जो अब तक उसे कहीं दिखाई नहीं दे रहा था।

पूरा मकान बिजली की रोशनी से जगमगा रहा था। बड़े–बड़े कमरे बने थे। सामने एक छोटा–सा बगीचा भी था। सुरेन्द्र के ऑफिस के लोग, सुधा के ऑफिस के लोग, लीना की सहेलियाँ पूरा मकान गुलजार है।

मणीमाँ ने कहा, ''पूजा के समय मैं जाना चाहती हूँ। पूजा राधा–गोविंद के मंदिर में ही करना। वहाँ से मैं अपने कमरे में चली जाऊँगी।" समय से तैयार होकर सुरेन्द्र और सुधा दोनों अपनी व्यस्तता के बावजूद मणीमाँ को लेने आ गए।
''चलो माँ! अपने घर में। मणीमाँ ने लीना को ढूँढा तो उन्होंने उसकी व्यस्तता बताई।
बेटे के कंधे का सहारा लेकर मणीमाँ ने बड़े हॉल में कदम रखा। ''मुझे राधा–गोविंद के मंदिर में ले जा रे। बेटे ने बहू को देखा। बहू ने सिर झुका लिया, ''माँ राधा–गोविंद की जगह को हमने बेच दिया है। वहाँ लोगों के रहने के लिए चार–मंजिला मकान बना है। पैसों की जरूरत थी, क्या करते माँ?''
स्तब्ध हो गई मणीमाँ। ''फिर मेरे राधा–गोविंद का विग्रह कहाँ पड़ा है?''

''वो रहा, वहाँ सिंहासन पर स्थापित किया है।'' आप पास जाकर बैठें–बेटे ने कहा। तो मणीमाँ ने देखा एक बड़े से झूले में राधा–गोविंद की मूर्ति झूल रही है। फूलों से सजी–धजी। मणीमाँ का मन दहल गया। एक मंदिर की कल्पना की थी, जहाँ हर रोज पूजा, अर्चना होती, भोग लगता, हजारों लोग प्रसाद पाते, गरीब दु:खी लोग मंदिर की धर्मशाला में रहते। इन्हीं सबकी तो कल्पना थी उनकी। उसी प्रकार का तय भी हुआ था सब कुछ। गरीब दु:खी लोगों की बात सोचकर ही तो, घर से थोड़ा हटकर राधा–गोविंद का मंदिर बनाने की इच्छा थी, जिससे घरवालों को कोई तकलीफ न हो। ठीक है, जैसी उनकी इच्छा।

अपने को संयत करके वह झूले के पास जाकर एक कुर्सी पर बैठ गई। लीना कहीं भी दिखाई नहीं दे रही थी। उसे भी जरूर धक्का लगा होगा।

पूरा कमरा लोग की भीड़ से ठसाठस भरा था। हर कोई अपने को श्रेष्ठ बताने का प्रयत्न कर रहा था। लीना आकर मणीमाँ के पास बैठ गई।

''लीना तेरी सहेलियाँ आ गई?''

''हाँ, दादी!''

''और वह लड़का?''

''बुलाती हूँ उसे...सोमेन...सोमेन!

एक सभ्य मार्जित स्वभाव का लड़का आकर खड़ा हो गया।

''सोमेन! यह मणीमाँ हैं, प्रणाम करो।''

''रहने दो बेटा, बड़ी इच्छा थी तुम्हें देखने की''–मणीमाँ ने कहा।

''आपके बारे में बहुत बातें करते हैं...आपकी बहुत तारीफ करती है लीना'', सोमेन ने हाथ जोड़ते हुए जवाब दिया।

''जाओ आनंद करो, खुश रहो, भगवान तुम दोनों को लम्बी आयु दे'', मणीमाँ ने आशीर्वाद दिया।

लीना ने राधा–गोविंद के बारे में कुछ नहीं पूछा, मंदिर की कोई बात नहीं की, मणीमाँ को धक्का लगा।

हर कोई अपने काम में व्यस्त। कोई खा रहा है, कोई बातें कर रहा है। सुरेन्द्र और सुधा अपने–अपने बॉस–दोस्तों को लेकर व्यस्त थे। किसी का भी ध्यान मणीमाँ की तरफ नहीं था। मणीमाँ धीरे–धीरे उठकर खड़ी हो गई। राधा–गोविंद के विग्रह को झूले पर से उठा लिया। अपने आँचल से ढँक लिया, जैसे कोई अपने बच्चे को सीने से लगा लेता है। सीढी–दर–सीढ़ी नीचे उतरने लगीं। रास्ते पर आ

गई। रास्ता पार किया फिर एक रिक्शे पर बैठ गई।

वृद्धाश्रम के पास आकर रिक्शा रुका। मणीमाँ उतरी। दरबान ने गेट खोला।

''मैं थोड़ी देर कुर्सी पर बैठकर फिर ऊपर चढूँगी, ठीक है?''

दरबान उनको देखकर अचरज में पड़ गया। वह सबको बुला लाया। सब मणीमाँ के वापस आने से खुश हो गए। मणीमाँ ने आँचल के नीचे से राधा–गोविंद को निकाला। सबने प्रणाम किया। शामलादी ने विग्रह को अपने आँचल में लिया। शामलादी की समझ में सब कुछ आ गया। उन्होंने कुरेदना ठीक नहीं समझा। संयत स्वर में कहा–''आओ, मणीदी! हम अब यहीं राधे–गोविंद के

विग्रह की स्थापना करेंगे। अपने घर में अपने पास ही इन्हें रखेंगे।''

मणीमाँ ने दरबान से कहा, ''मुझे कोई पूछने आए, तो कहना–यहाँ कोई मणीमाँ नहीं रहती। आज से मणीमाँ उस घरवालों के लिए मर गई है। यही अब मेरा घर है। वहाँ से मैंने अपना स्थान छोड़ दिया। वहाँ मेरी कोई जरूरत नहीं। यहाँ मेरा अपना घर है। इन्सान की जहाँ जरूरत हो, वहीं रहना चाहिये। मैं यहीं रहूँगी, अपने राधा–गोविंद के साथ।

सब एक–एक कर ऊपर चले गए। दरबान ने गेट बंद कर दिया। शाम को शंख, घंटा, धूप और अगरबत्ती की सुगंध से पूरा आश्रम गमगमा उठा। राधा–गोविंद के विग्रह की स्थापना हो गई।

कविता

बीच बहस में

1.
बीच बहस में
सिर्फ नारे हैं–
किसी को सुनने का धैर्य
धीरे–धीरे
लुप्त हो चुका है
हर तर्क
सिर्फ अपनी पार्टी की ओर झुका
हर तथ्य
सिर्फ अपनी किताब से निकला
और सच
वह कोने में खड़ा
धूल से ढकी फ़ाइल–सा
अनसुना रह जाता है।

2
बीच बहस में
जब किसान की बात उठती है,
तो मंच पर बैठे चेहरों पर
सिर्फ आँकड़े उभर आते हैं
भूख, पसीना और कर्ज़
कभी विषय नहीं बनते–
क्योंकि बहस का केंद्र
मानव नहीं
बल्कि सत्ता होती है।

3
बीच बहस में
तुम्हारी आँखों की नमी
और मेरे शब्दों की तल्खी
दोनों ही सच थे
हम एक–दूसरे को
सुनने का साहस
खो बैठे थे
और तभी जाना–
बहस में हारना नहीं
रिश्तों को जीतना
सबसे बड़ी विजय है।

4
बीच बहस में
कभी अचानक हँसी भी आ जाती है
तुम्हारा एक शब्द
मेरे तर्क की दीवार गिरा देता है
यहीं से शुरू होता है–
एक नया संवाद
जहाँ बहस
हार–जीत नहीं
बल्कि
प्रेम का दूसरा नाम बन जाती है।

5
बीच बहस में
मैं खुद से ही उलझा रहता हूँ।
मन कहता है–
यह रास्ता सही है
मस्तिष्क कहता है–
नहीं, यह व्यर्थ है
मैं
दोनों पक्षों का वकील भी हूँ
और जज भी
कभी निर्णय आता है
कभी सिर्फ चुप्पी
और वही चुप्पी
मेरी सबसे गहरी दलील बन जाती है–
जो आत्मा की सच्चाई से जन्म लेती

पवन शर्मा
विद्या भवन, सुकरी चर्च,
जुन्नारदेव,
छिन्दवाड़ा, म.प्र.–
मो.–9425837079

जीवनी

साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में बख्शी जी की निबंध कला

डॉ. नलिनी श्रीवास्तव 'शिवायन',
भिलाई, मध्यप्रदेश, मो. 9752606036

छत्तीसगढ़ के साहित्यिक बिरादरी में बख्शी जी किसी परिचय का मोहताज नहीं हैं। बख्शी जी ने अपने जीवन की शुरूआत शिक्षकीय जीवन से प्रारम्भ किया था। सर्वप्रथम स्टेट हाई स्कूल में आप संस्कृत के शिक्षक हुए। उस समय आपके छात्रों में किशोरीलाल शुक्ल, कुंजबिहारी लाल चौबे आपके छात्र रहे। खैरागढ़ के विक्टोरिया हाई स्कूल में अंग्रेजी के शिक्षक रहे। उस समय आपके छात्रों में विजय लाल ओसवाल, मदन चन्द जैन, गुलाब चन्द जैन, जयशरण सिंह, लालशरण सिंह भी थे।

आखिर वह क्या रहस्य था कि छत्तीसगढ़ के एक छोटे से ग्राम खैरागढ़ में जन्म लेकर बख्शी जी ने हिन्दी साहित्याकाश में एक ज्योतिर्मय अलौकिक नक्षत्र का स्थान ग्रहण किया। आपकी ज्ञान पिपासा अदम्य साहित्य लिप्सा ने ही आपको साहित्य जगत् का कीर्तिमान स्तम्भ माना। बख्शी जी अक्षर ज्ञान होते ही देवकीनन्दन खत्री के 'चन्द्रकान्ता' और 'चन्द्रकांता संतति' से परिचित होते ही साहित्य सागर में डुबकी लगाने के लिए व्याकुल हो गए और तभी से वे साहित्य जगत् के कल्पना लोक में विचरण करने लगे। बख्शी जी ने जीवन पर्यन्त कथा–साहित्य के मायाजाल का मंथन कर लोगों को अमृतमयी चिरन्तन साहित्य लक्ष्मी का मर्म समझाते रहे।

सुबह की सुहावनी झिलमिलाती धूप में अपने निवास–स्थान के बरामदे में ऊनी शाल को अस्त–व्यस्त लपेटे वयः भार नमित बूढ़ा मसीहा बैठा रहता, जिसने सदैव अपने जीवन को सत्य की ही छाँव में रखने की कोशिश की। उस छाँव की शीतलता का अहसास ही उनका प्रेरणा स्रोत था, इसी से उनके निबंध गहन अध्ययन की अनुभूति से परिपक्व चिन्तन की अजस्र धारा में बह उठी, फिर वह उपलब्धि समतल मैदान में ही नहीं, क्लिष्ट विषयों के ऊबड़–खाबड़ रास्तों से होती हुई समीक्षा शास्त्रों के दुर्गम पहाड़ों को भी भेदकर हिन्दी साहित्य के अनुपम निर्मल स्त्रोत में परिणत हो गई।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में हमें यह स्पष्ट लक्षित होता है कि हिन्दी साहित्य के अनुपम नंदनवन को बनाने में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, नन्द दुलारे वाजपेयी और अन्य प्रबुद्ध विद्वानों का साहित्यिक अवदान से अनवरत परिश्रम तथा जागरूक बुद्धिमत्ता का ही प्रतिफल है। उसी साहित्यक नंदनवन में श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के स्नेह संरक्षण में बख्शी जी रूपी कल्पतरु का विकास हुआ, जिनकी रचनाओं के सौरभ से हिन्दी साहित्य की मंजूषा सुरभित हुए बिना न रह सकी। यही कारण है कि बख्शी जी आचार्य द्विवेदी जी के पश्चात् सरस्वती के सम्पादक बने।

आपने साहित्य जगत् में हिन्दी साहित्य का अंकुरित रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द का युग देखा। द्विवेदी युग में क्रमशः उसकी श्री वृद्धि को देखा, फिर भी आधुनिक युग में साहित्य जगत के उथल–पुथल लोगों की मनोवृत्ति से भी परिचित हुए। इन्ही प्रसंगों को लेते हुए आपने जो देखा–सुना, अनुभव किया उसे पूर्ण सच्चाई से अपनी लेखनी में बद्ध कर दिया।

इसमें संदेह नहीं कि तत्कालीन परिवेश में हिन्दी साहित्य के नवयुग का आविर्भाव हो रहा था। उसी समय निराला जी ने भी अपनी कुछ कविताएँ सरस्वती में भेजी। उनकी रचनाओं में जो नवीन प्रयोग किया गया था, वह हिन्दी साहित्य के लिए अवश्य विलक्षण था। बख्शी जी 'वाल्ट व्हिटमैन' की कविताओं से परिचित हो चुके थे। फिर भी निराला जी की उन रचनाओं को छापने का साहस बख्शी जी को नहीं हुआ। उन्होंने उन रचनाओं को अपने कुछ मित्रों को दिखाया, पर उन्होंने उसको पसन्द नहीं किया। पंडित श्रीधर पाठक जी ने कहा–ये कैसी रचनाएँ है? इन्हें किस तरह पढ़ना होगा, यह समझ में नहीं आता। बख्शी जी ने वे रचनाएँ लौटा दी। फिर वही रचनाएँ कलकत्ता के 'मतवाला' में प्रकाशित हुई। पंत जी की 'उच्छवास' नाम की एक काव्य संग्रह उसी समय प्रकाशित हुई। पंडित शिवधर पाण्डेय जी ने उस पर एक बड़ा ही सुन्दर आलोचनात्मक लेख लिखा। बख्शी जी ने उस आलोचनात्मक लेख को प्रकाशित किया; परन्तु पुस्तक परिचय में उसके संबंध में उन्होंने यह लिखा कि वह कविता 'प्रेटी नान्सेंस' है अर्थात् शब्द सौन्दर्य रहने पर भी उसमें कोई तथ्य नहीं है। उसमें कोई भाव सौंदर्य नहीं है। इसके बाद भी पंत जी इंडियन प्रेस आया करते थे। उनसे साहित्य चर्चा भी हुआ करती थी। पंत जी ने उनको 'कलरव' शीर्षक से तीन कविताएँ दीं। उन कविताओं के भाव बिलकुल स्पष्ट थे और भाषा भी सरल थी। उन कविताओं को बख्शी जी ने सरस्वती में प्रकाशित किया। एक बार पंत जी को पीताम्बर दत्त जी ने कहा कि वे बख्शी से अच्छी तरह परिचित हैं, क्योंकि वे भी सेंट्रल हिन्दू कॉलेज के विद्यार्थी थे। बख्शी जी उन्हें अच्छी तरह से जानते थे, इसलिए वे पंत जी के साथ पीतम्बर दत्त के बंगले में गये, वहीं पंत जी ने 'मौन निमंत्रण' और 'शिशु' शीर्षक कविता सुनाया, उसे सुनकर बख्शी जी मुग्ध हो गये और उन्होंने कहा कि आपमें सचमुच कवित्व शक्ति है, मैं अभी तक भ्रम में पड़ा हुआ था। उसके बाद वे प्रतिमास 'सरस्वती' के प्रथम पृष्ठ पर पंत जी की कविताएँ प्रकाशित करने लगे। उस समय सरस्वती में जो तरुण लेखक लिखने लगे थे, उनमें आनन्दी प्रसाद श्रीवास्तव, गिरजादत्त शुक्ल, ईलाचन्द जोशी आदि की रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। बख्शी जी के संपादनकाल में प्रसाद जी की प्रसिद्ध कहानी 'आकाशदीप' का भी प्रकाशन किया गया। सुदर्शन जी भी सरस्वती के लिए कहानियाँ लिखने लगे। उसके बाद तो कितने ही लेखकों की अच्छी कहानियाँ प्रकाशित हुई। बख्शी जी के स्वभाव का यह निःश्छल भाव उन्हें साहित्य जगत् में कालजयी बनाने के लिए पर्याप्त है।

बख्शी जी का सम्पूर्ण जीवन साधनामय था। आपने 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' को अपने जीवन में साकार कर लिया था। आपके अनुसार साहित्य वही उत्कृष्ट होता है, जिसमें रचनाकार के जीवनदर्शन–संबंधी अटूट आत्म–विश्वास की अकृत्रिम धारा प्रवाहित होती है। इसी से साहित्य में जीवन बोलता है और तभी वह सजीव भी हो उठता है। ऐसे साहित्य की रचना निरंतर अविराम साधना से होती है। ऐसे साहित्य में शब्दों का मूल्य नहीं होता, बल्कि उन शब्दों के भीतर छिपे हुए अर्थपूर्ण व्यक्तित्व का मूल्य सर्वोपरि है। यह बात भी आपके साहित्य के संदर्भ में सत्य है।

समीक्षक होने के कारण आप सहज किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करते हैं। उसका सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं, गहराई तक पहुँचने की चेष्टा करते हैं। अपना जीवन–दर्शन प्रस्तुत करते हैं। इसके कारण वैचारिकता आपके निबंधों का प्राणतत्व बन गया है। आपकी समीक्षात्मक कृतियाँ विश्व साहित्य, हिन्दी कथा साहित्य, हिन्दी साहित्य–विमर्श, प्रदीप, समस्या और समाधान, नवरात्र हिन्दी साहित्य एक ऐतिहासिक समीक्षा आदि हैं।

आपकी साहित्यिक कृतियाँ मन की गहराई को स्पर्श करती हैं। आपने जीवन और जगत् से शाश्वत सत्य को अनुभूति और चिंतन की गहराई से देखा–परखा और उसे सूक्ष्म एवं व्यापक दोनों ही परिवेशों में अभिव्यक्त किया है, परन्तु कोई भौतिक बाधा उन्हें साहित्य–साधना से विचलित नहीं कर सकी। बख्शी जी के निबंध में तत्कालीन साहित्यिक परिवेश का विशुद्ध चित्रण मिलता है। वस्तुतः बख्शी जी स्वतः को केन्द्र में रखकर अपने युग की मूलचेतना और उपलब्धियों की विवेचना करते हुए कभी थकते नहीं। आप अपने निबंधों में मूलतः साहित्य के प्रमुख प्रयोजनों की चर्चा करते हुए स्वच्छन्दतावादी लेखकों की तरह आत्मानुभूति के सौंदर्य को साहित्य का इष्ट निरूपित करते हैं। आपके अनुसार साहित्य रचना में ही लेखक को आनन्द की अनुभूति हो जाती है, चाहे दूसरे लोग उसे पढ़ें या न पढ़ें, सराहें या न सराहें। आपका सम्पूर्ण निबंध साहित्य आत्मप्रकाशन की इसी आनन्दमयी पृष्ठभूमि

पर स्थित है। बख्शी जी के निबंध संग्रह 'मेरी अपनी कथा', 'कुछ और कुछ', 'यात्री', 'बिखरे पन्ने', 'मेरे प्रिय निबंध', 'पद्म–वन', 'मेरा देश', 'अन्तिम अध्याय' आदि हैं। एक समालोचनात्मक उपन्यास कथाचक्र नाम से लिखा है। 'भोला' आपका बाल उपन्यास है। वे दिन भी छात्र–जीवन से संबंधित एक उपन्यास है।

बख्शी जी अपनी प्रतिभा से स्पर्श छोटी–सी घटना या वस्तु को भी निबंध का गंभीर कलेवर प्रदान कर देते हैं। बख्शी जी के संदर्भित निबंधों के शीर्षक और उनमें प्रस्तुत सामग्री भी नवीनता लिए हुए हैं, फलतः आपकी वे निबंध रचनाएँ आज भी ताजी प्रतीत होती है। उनमें मानव–जीवन का रस है, वह उन्हें सदा ताजगी प्रदान करता रहेगा।

बख्शी जी के संबोधन शैली में 'तुम कौन हो' या 'तुम्हारे लिए' में सीधे सरल प्रश्नों को उठाकर जीवन की दार्शनिक विवेचना करते हुए निजी विचार व्यक्त करने की विशिष्ट शैली को अपनाया है। आपकी रचनाओं को वैयक्तिक निबंध की परिधि से बाहर नहीं जाने देती।

बख्शी जी ने किसी भी निबंध में किसी की मानवीय दुर्बलताओं का आधार बनाकर आलोचना नहीं की है। अगर कहीं साहित्यिक समीक्षा का अवसर आया है, तो उसे वे पाठकीय स्तर पर एक रचनात्मक मोड़ प्रदान कर दिये हैं।

जीवन के विविध आयामों का सूक्ष्म निरीक्षण कर विविध विषयों और प्रसंगों से संबंधित हिन्दी के कुछ अन्य निबंधकारों ने भी इस प्रकार की रचनाएँ लिखी हैं, पर उनमें वह वैयक्तिकता नहीं आ सकी है जो बख्शी जी के निबंध साहित्य की विशेषता है।

बख्शी जी ने धार्मिक, सांस्कृतिक राजनैतिक महत्त्व के विषयों को भी केन्द्र बनाकर अपने विचारों का प्रकाशन किया है। इनमें आपने शक्ति की उपासना के विविध रूपों और नामों का विश्लेषण किया है। आपके ऐसे निबंध व्यापक सांस्कृतिक और दार्शनिक दृष्टिकोणों को भी प्रस्तुत करते हैं।

इस तरह बख्शी जी के वैयक्तिक निबंधों की परिधि अत्यन्त व्यापक है। इसमें आपके व्यक्तित्व के प्रायः सभी पक्षों का समाहार हो गया है। बख्शी जी के रचनाओं को हम कालजयी भी कह सकते हैं। विषय और शिल्प दोनों दृष्टियों से वे निबंध आज भी नवीनता लिये हुए हैं और मानव–जीवन की सहज संवेदनाओं के निकट हैं। कालजयी इसलिए भी है; क्योंकि अभी तक हिन्दी साहित्य में इन विषयों पर इसी प्रकार की ऊर्जा और अभी तक ऐसी रचनाएँ देखने को भी नहीं मिलती।

बख्शी जी के निबंधों में हम उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व के दर्शन कहीं भी कर सकते हैं। आपकी रचनाओं में निर्वैयक्तिकता न होकर वैयक्तिकता ही प्रमुख है। यह आपके व्यक्तित्व की निजी छाप है, जो आपको दूसरे निबंधकारों से पृथक् कर देती है। इस श्रेणी में आनेवाले निबंध कथा की धारावाहिकता लिये हुए है और विचार उस धारा में लहरों की भाँति विद्यमान है। या यों कहें कि वे उसी से प्रसूत है। उनका अलग अस्तित्व नहीं है। कथा की प्रमुखता के कारण ऐसी रचनाओं में विचारों की बोझिलता प्रभावित नहीं करती। इस तरह कथा विचारों को जन्म देती है और विचार बख्शी जी के इन निबंधों का कलेवर निर्मित करते हैं। वे दोनों अन्योन्याश्रित हैं।

छत्तीसगढ़ की आत्मा का जो चित्र बख्शी जी ने 'कारी' की कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया है, वह एक विशेष कलात्मक उपलब्धि है। साहित्य और संस्कृति में 'कारी' एक ऐसी पात्र बन गई है जो अपनी सारी कमजोरियों के साथ अपनी सरलता, संघर्षशीलता, सेवा–भावना और ममत्व के द्वारा एक सम्पूर्ण संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने लगी है। यह एक साधारण पात्र की असाधारण शक्ति है। बख्शी जी के साहित्य में जितने भी नाम आए हैं, वे यथार्थ हैं, कल्पित नहीं हैं। यथार्थ नामों को साहित्य में समाहित कर उन्हें एक पात्र या चरित्र का व्यक्तित्व प्रदान करना भी एक साहित्यकार का असाधारण कार्य है। इन विविध नामों एवं पात्रों के कारण आपके साहित्य में संदर्भगर्भता की विशेषता भी आ गई है। यह बात हिन्दी के अन्य निबंधकारों की रचनाओं में नहीं मिलती। आत्मकथा या भोगा हुआ यथार्थ आपके साहित्य का मूल प्रेरणा स्रोत हैं। इसलिए उसमें स्व और लेखकीय ईमानदारी है। उनकी भावनाओं और विचारों को संप्रेरित करने का कार्य भी करती है। जैसे स्मृति नामक निबंध में बख्शीजी अतीत की शैशवकालीन बातों का स्मरण करते हुए तत्कालीन परिवेश की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। यह मुख्यतः तत्कालीन सामाजिक साहित्यिक प्रवृतियों का उद्घाटक बन जाता है।

बख्शी जी साहित्य के ऐसे सहृदय पाठक रहे हैं और उन्होंने इसी स्तर पर अपने समीक्षात्मक निबंधों की रचना भी की है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में साहित्य का तीर्थसलिल एक अजस्र धारा के रूप में प्रवाहित हुआ दिखाई देता है।

एक उपन्यासकार को जिस कथारस की आवश्यकता होती है, वह विशेषता बख्शी जी के किसी भी निबंध में हम पा सकते हैं। वस्तु और शिल्प दोनों ही धरातलों पर निश्च्छल अभिव्यक्तिपूर्ण ईमानदारी के साथ अभिव्यंजित हुई है।

प्रेम की अतरंग रहस्यात्मक अनुभूति छायावाद के प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी की रचनाओं में दिखाई देती है, वहीं हम बख्शी जी की 'झलमला', 'गूँगी', 'गुड़िया' कहानी में देख सकते हैं। बख्शी जी कथात्मक निबंधकार के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। उनके निबंधकार का यह व्यक्तित्व द्विवेदी और शुक्ल युग के निबंध आदर्शों से पृथक् है। वह पूर्णतः आत्मपरक है, जो शुक्लोत्तर हिन्दी निबंध साहित्य की प्रमुख विशेषता है।

समग्रतः बख्शी जी अपने सम–सामयिक सभी प्रमुख निबंधकारों की निबंध रचनाओं से अपना वैशिष्ट्य रखे हुए हैं। उनके निबंधों की समग्र तुलना हम किसी अन्य निबंधकार से नहीं कर सकते। इस क्षेत्र में उन्होंने स्वयं एक नये मार्ग का निर्माण किया है। उनके निबंधों को हम कथात्मक निबंधों का पथ कह सकते हैं जो स्वातंत्र्योत्तर युग में स्वयं अपना प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार बख्शी जी की भाषा शुद्ध, परिष्कृत, सरल और सुबोध है। भाषा पर आपका पूर्ण अधिकार है। आपके निबंधों में वाक्य छोटे–छोटे हैं। भाषा में मिठास है, करुणा का उमड़ता हुआ स्रोत है। गद्यशक्ति से सम्पन्न आपकी भाषा अत्यन्त ही आत्मीयता और निश्च्छल स्नेह में डूबी रहती हैं, मानों आप निबंधों के माध्यम से अपना हृदय पाठकों के सामने खोलकर रख देते हैं।

साहित्य मनीषी बख्शी जी ने अपने अनवरत परिश्रम, लगन, ईमानदारी, निष्ठा, निर्भीकता, निस्पृहता, दृढ़ता, सद्भाव से युक्त होकर उन्होंने स्वान्तः सुखाय, निःस्वार्थ, निष्काम, साहित्य साधना किया। वह सर्वत्र वंदनीय है। आप एक भावुक कवि, कुशल कहानीकार, सफल सम्पादक, स्वस्थ आलोचक व समीक्षक, वैयक्तिक निबंधकार, मौलिक चिंतक और आदर्श शिक्षक थे। आप सच्चे अर्थों में अपने को 'मास्टर जी' ही कहलाना पसंद करते थे। अगले जन्म में 'मास्टर ही बनूँ' यही आपकी अन्तिम अदम्य लालसा रही।

हिन्दी साहित्य के सरस्वती के संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के उत्तराधिकारी छत्तीसगढ़ के साहित्य वाचस्पति पदुमलाल पन्नालाल बख्शी जी बने। 1921 में द्विवेदी जी ने सरस्वती का प्रधान संपादक बनाया। बख्शी जी ने पूर्ण परिश्रम के साथ ईमानदारी से 'सरस्वती' की प्रतिष्ठा बनाए रखी। उन्हें इलाहाबाद इंडियन प्रेस में रहकर काम करना पड़ता था। उन्हें इलाहाबाद रास नहीं आया। अतः वे अपनी जन्मभूमि खैरागढ़ से भी सरस्वती का संपादन किया। बख्शी जी हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, मराठी और बंगला भाषा के कर्मठ विद्वान थे। उनकी 30–40 किताबें प्रकाशित हुई हैं। उनका विश्व साहित्य कथा–विमर्श, कथा–चक्र, पंचपात्र, तुम्हारे लिए, मेरी अपनी कथा, समस्या और समाधान, अंतिम अध्याय आदि हैं।

(28 दिसम्बर बख्शी जी की पुण्य तिथि के उपलक्ष्य में)

कहानी

धूप

डॉ. यशोधरा भटनागर
देवास, मध्यप्रदेश –455001
फोन नंबर–9425306554

रविवार, कहने को छुट्टी, रिलैक्स होने का दिन। पर... और दिनों से ज्यादा थकाऊ दिन। हफ्ते भर के काम समेटते ढाई–तीन बज गए। अब आराम... खिड़कियों पर मोटे परदे सरका दूँ... । उफ्फ् यह चिलचिलाती धूप... दूर–दूर तक पैर पसारे विकराल रूप धर रही है...। तभी निगाह पारिजात के पेड़ पर टँग गई.. हरी–हरी पत्तियों की छाँह से ढके सकोरे के जल में नन्हीं चिड़िया जल–कीड़ा कर, प्यास बुझा फुदक रही थी। मुस्कुराते हुए आँखों पर चश्मा चढ़ा, महादेवी जी की रामा और लछमी के जीवन में ताक–झाँक करने लगी। खरबूजे के रंग की तीन सुंदर–सलोनी पुत्रियों की जननी कर्मठ, भक्तिन। पुत्री जननी बन परिवार में कैसी उपेक्षा तिरस्कार और अनंत कष्ट झेल रही है...। अक्षर धुंधते पड़ गए। आँखें पोंछ, चश्मा साफ किया। पुनः भक्तिन के संसार में पहुँचती कि तभी.. 'सब्जी ले लो बाई' सब्जी वाली अम्मा इस समय!

ज्येष्ठ माह के आग उगलते सूरज के तीखे तेवरों से सहमी, निःशब्द दोपहरी में, सूरज को धत्ता बता, सिर पर सब्जी का टोकरा लिए वह खड़ी थी। झुर्रियों भरा सत्तरवें वसंत को व्याख्यायित करता गौर वर्णी, धूप से झुलसा, कुम्हलाया मुख आज अवसाद की छाया से आवृत था। नाक में बड़ी–सी लौंग, हाथ में चांदी के कड़े, सीधे पल्लू की छींटदार सूती धोती से रजत–धवल केश राशि और सूना माथा ढाँके अम्मा के नम नेत्र...। धूल–धूसरित बिवाई फटे पैरों में टायर की काली चप्पलें, जो पैरों के नीचे के कठोर धरातल की चुगली कर गई।

आओ, अंदर आ आओ। सब्जी का टोकरा नीचे उतरवा लिया। इतनी गर्मी में मत निकला करो, अम्मा! लू लग जाएगी। बैठो, मैं अभी आती हूँ।

हाथ में खाने की थाली और पानी ले बाहर आई। लो, खा लो अम्मा। एकाएक अम्मा फूट–फूटकर रोने लगी। अपने कंधों पर मेरा सांत्वना भरा स्पर्श पा उनके अंदर घुटता दुःख स्वर पा गया। झुर्रियों वाला, पोपला मुख, गहरे अवसाद से घिर आया। बेटा! बुढ़ापा ऐसा ही होता है... बेटे–बहुओं ने चूल्हा तो पहले ही अलग कर लिया था। पर सिर पर छत एक ही थी। सब्जी बेचती और घर के एक कोने में रूखा–सूखा खाकर पड़ी रहती थी। लड़कों ने अंगूठा लगवा घर अपने नाम कर लिया और मुझे। अपने बहते दुःख को, खुरदरे आँचल से पोंछने की एक बेकार–सी कोशिश... क्या यह सैलाब यूँ थम सकता है? बरसते आँसू पोपले गालों पर भर आए।

पुत्री जननी भक्तिन और पुत्रों की जननी, अभिमानी अम्मा, जीवन के संध्या काल में, दोनों ही अग्नि पथ सहगामिनी हुई.. । बुढ़ापे की लाठी, बुढ़ापे का सहारा!

तभी मेरी बिटिया नए मटके का ठंडा पानी और तश्तरी में गुड़ की डली ले आई। उसके शीश पर हाथ रख अम्मा ने आशिषों की वर्षा कर दी। थोड़ा आराम कर तो अम्मा! बाँहों के सहारे, गठरी–सी बनी अम्मा वहीं लेट गई। जीवन का भार झेलता, आँधियों और थपेड़ों का सामना करता, शिशु–सा निष्पाप मुख शांत था। शायद अपनेपन की क्षुधा भी तृप्त हो चुकी थी।

मैंने सब्जी का टोकरा एक ओर रखने की कोशिश की। ओह, कितना भारी है! भरी दोपहरी में, जीवन संध्या काल में अम्मा यह भार ढोती घूम रही हैं।

मुँह एक कसैलेपन से भर गया।

अनेक प्रश्न सिर उठा रहे थे और उत्तर कहीं मुँह छिपा कर बैठ गए थे..।

में उठ खड़ी हुई, क्या नम्बर है? 94गगगगगगग00 हैलो। हाँ जी। 'सेवा सदन.....।'

नन्ही चिड़िया जल भरे मिट्टी के सकोरे में क्रीड़ा कर रही थी।

वो तीन बरस!

दूर तक कार संग चलती लंबी सड़क! एयरपोर्ट से उसके घर की दूरी आज कितनी लंबी हो गई है। बरसों–बरस से वही जाना– पहचाना शहर पर... इन बीते बरसों में कितना कुछ बदल गया है। आँखों में कुछ चुभा, रूमाल से चश्मा साफ किया।

घर से दूर... कुछ परिस्थितियों, कुछ विवशताएँ... तीन बरस से परदेस से घर न आ पाया। वही वीडियो कॉल्स, फोन, चैटिंग्स के साथ इन तीन सालों में उसकी बेटी भी साल–भर की हो गई।

बेटियों की तो ससुराल से मायके न आ पाने की मजबूरियाँ होती हैं। वह बेटा है माँ–बाबा के सपनों को संजोये कई सपने... सपने–ही–सपने, सपनों को सच में बदलते सप्ताह, महीने, बरस बीत गए घर आए... अबोली–अनाम परेशानियाँ जब–तब मुँह बाए खड़ी हो जातीं।

सड़क किनारे खड़े हरे–हरे बाँस के पेड़... शायद उसे देख झूम गए। घर आ गया। बचपन से ही ये बाँस के पेड़ उसे घर से जोड़ते आए है। कार घूमी और सजीले सफेद घर के सामने खड़ी हो गई। यही तो खूबी है माँ की, माँ ने कितना सुंदर सजा रखा है घर जो भी सामने से गुजरता है, उसकी निगाहें बरबस घर की ओर चली ही जाती हैं।

अपनी पोती का स्वागत के लिए आतुर प्रसन्नवदना माँ आरती का थाल लिए द्वार पर आ गई। मुख्य द्वार से प्रवेश द्वार तक बिछी गुलाब की पंखुड़ियों और माँ की ममता से आँगन महक रहा था। डबडबाई आँखों से माँ ने मिनी को देखा और अपने आँचल में छुपा लिया। मैं माँ के चरण छूता उससे पूर्व ही माँ नन्हीं बच्ची–सी मुझसे चिपक गई अपने आँसुओं को हथेली से पोंछते माँ को देखा। वही मुस्कान! पर इन तीन बरसों ने माँ के चेहरे पर कई आड़ी–तिरछी रेखाएँ खींच दी थीं। दूर खड़े बाऊजी ने अपने दोनों बाँहें फैला दीं। मैं भी बाऊजी का नन्हा बन उनकी बाँहों में समा गया। बाऊजी भी अब पहले सा कहाँ रह गए थे। जो मजबूत हाथ मुझे झुला झुलाते थे, वो कमजोर लग रहे थे। माँ और बाऊजी के ये चेहरे उस चेहरे से पूरी तरह अलग थे, जिन्हें वीडियो कॉल में देखा करता था।

''आओ बेटा'' घर के कोने–कोने से माँ का कला–कौशल झाँक रहा है। मिनी का कमरा लाल, पीले, नीले गुब्बारों संग इमोजीस वाले पीले गुब्बारों से सजा उमग रहा है। बिछौने पर माँ के हाथ का बना, स्नेह–ममता से भीगी पंक्तियों में सजा कार्ड, उन्हीं के हाथों से बने कागज के फूलों का गुलदस्ता और खिलौने मिनी का स्वागत करने को तत्पर... माँ को एक बार फिर गौर से देखा। उनकी आँखों पर चढ़े चश्मे का लेंस मोटा हो गया है।

इन तीन सालों ने पता नहीं, क्या–क्या बदल दिया। मैं अंदर से चटकता झर रहा था, तभी गुब्बारों से सजी दीवारों पर मेरा ध्यान गया। कई जगह से दरकी–चटकी दीवारें, घर अम्मा बाऊजी संग....।

ये तीन बरस कैसे लौटा पाऊँगा मैं, ये तीन बरस! जिंदगी के तीन बरस!

समीक्षा :

जाना है समय के पार

उषा पाण्डेय 'कनक'
कंदवा, वाराणसी
9102883667

''अवरोधक हो जो प्रगति पथ का
वह वाद हमें स्वीकार नहीं
सौहार्द प्रेम के पौधे पर
उन्माद हमें स्वीकार नहीं
काँटों को फसल लिख दे,
ऐसा अनुवाद हमें स्वीकार नहीं।''

कवि या गीतकार की रचना उसके व्यक्तित्व का आईना होती है और वह अपने समय को अपने साथ लेकर चलता है, इस तरह कवि एक युग को साथ लेकर चल रहा होता है। ऐसे में वह किसी मत या वाद के मार्ग का अनुसरण नहीं करते हुए स्वयं का मार्ग बनाते हुए एक युगद्रष्टा के रूप में समाज के लिए कलम चलाते हैं, जो हर युग के लिए प्रासंगिक होते हैं उपर्युक्त गीतांश में यहीं भाव स्पष्ट हो रहा है।

गीतकार सूर्यप्रकाश मिश्र जी के गीतों की बात करें, तो आपकी सृजनात्मकता का आधार बृहद होता है, रचनाओं का संसार भी अपरिमित है। वह अपने समय की सूक्ष्मतम घटनाओं को स्वयं में जीते हैं, साथ ही घटना या चरित्र को अपनी पृथक् दृष्टि से रखने का प्रयास करते हैं। कवि या रचनाकार की संवेदना, समाज के प्रति उत्तरदायित्व ही उनकी रचना में दृष्टिगत होता है साथ ही उनका लेखन समाज के हर वर्ग को छूकर निकलता है, जिसमें प्रकृति की कोमलता भी दिखती है साथ ही मानव जीवन की जटिलता बड़े ही सरलता से बहती दिखती है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर की पह पंक्ति इसको ही चरितार्थ करती है–''यह सही है कि कवि कल्पना सचेतन हृदय जितना ही
विश्वव्यापी होता है, उतनी ही उसकी रचना में गहराई से हमारी परितृप्ति बढ़ती है।''

मैं सूर्य प्रकाश मिश्र जी के गीत संग्रह 'जाना है समय के पार है' की बात करें तो जिस प्रकार इनके अन्य गीत संग्रह अलग अलग धरातल पर अपनी मजबूत पकड़ के साथ पाठक के दिलो दिमाग में बिम्ब और प्रतीक के माध्यम से चित्र उपस्थित हुए असर डालते हैं, उनसे यह गीत संग्रह इस मामले में अलग है कि इसमें भिन्न भिन्न विषयों के गीत रखे गए हैं, यह इनका आठवाँ गीत संग्रह है, यह प्रतिष्ठित प्रकाशन लिटिल बर्ड पब्लिकेशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित है।इसमें 104 पृष्ठों में 78 गीत संगृहीत है।

किसी भी पुस्तक का शीर्षक पुस्तक का प्रथम परिचय होता है और पाठक के हृदय में पढ़ने की उत्सुकता पैदा करता है।कवर पृष्ठ बहुत ही नायाब है तथा इसमें नैसर्गिक दृश्य बहुत ही खूबसूरती से उकेरा गया है, जो इसके शीर्षक को काफी हद तक परिभाषित कर रहा है।

आरम्भ में ही कवि अपनी वसुधैव कुटुंबकम् की भावना में सम्पूर्ण जीव और मानव के हितार्थ समष्टि कामना करते हैं।
''हो जिससे कल्याण विश्व का ईश्वर से ऐसा वर माँगे
पोषण हो पर शोषण न हो सब में यही भावना जागे
जीव और वन दोनों मिलकर बन जाये जीवन के धागे
पशु पंछी के साथी हो ले मिलकर कदम बढ़ाये आगे।''

समाज के प्रमुख अवयव, जिनमें प्रमुख रूप से संस्कृति, सामाजिक समूह, सामाजिक मानदंड, सामाजिक भूमिकाएँ, सामाजिक स्तरीकरण और सामाजिक परिवर्तन में मानव स्वरूप कितना बदल गया इसी वास्तविकता को गीत के माध्यम से पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं–
''दो हरे पेड़ सूखते देखे
कह रहे थे कि बेसहारा हूँ
एक का नाम खुशमिजाजी था
एक बोला में भाई चारा हूँ।
शान्ति की सूखती लता बोली
सुरमयी वक्त का इशारा हूँ।''

तनावपूर्ण जीवन–शैली में जिंदगी के लिए बेहद अहम हिस्से को खोता जा रहा तथा एकांत में जीने लगा है, भौतिकता के मृगमरीचिका में वास्तविक सुख भूलता जा रहा, यह विडंबना नहीं तो और क्या है, गीतकार सूर्य प्रकाश मिश्र जी की इस बात से चिंतातुर हैं।

मानवता का गुण ही सर्वोपरि गुण है, जिसमें सबके लिए कल्याण भाव उत्सर्जित और पल्लवित होते हैं। मिश्र जी ने अपने गीतों में अनुभव और संवेदना से मिश्रित जीवन की यात्रा को बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से इस तरह सज्जित किये हैं कि वह किसी एक का नहीं, वरन प्रत्येक के हृदय में समान गति एवं भाव में बहनेवाली धारा बनी है, जो कहीं दर्द में भींजती है, तो कहीं खुद को आश्वासन देती है।
'गोधूलि', 'घाट की शाम', 'सपनों का स्तूप', 'पीला पत्ता' और 'भार की हवा जैसे गीत हैं–
''वय में गोधूलि उतर आयी
ऐश्वर्य दूसरे लोक चला
बस शेष रह गयी परछाई
खेती की नींव में दिन डाले
कुछ सपने थोड़ी उम्मीदें
न्योछावर कर दी फसलों पर
सुख चैन भरी कितनी नींदें
पर लगा सभी कुछ डूब गया
जब फसल काट कर घर आई।''

उम्र के एक पड़ाव पर पहुँच वक्त का विनिमय करते हुए पूरे जीवन का अवलोकन कर इंसान अपना आकलन करता है। मित्र जी के गीतों की यही खासियत है दिल से लिखते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि यही तो सत्य है।एक वक्त आने पर व्यक्ति यही महसूस करता है।इस गीत में मानव मन के अतृप्त भाव को उकरते हुए कवि कुछ हताश जरूर दिखते हैं।

गीत संग्रह 'जाना है समय के पार' में मिश्र जी ने प्रतीकों और बिम्ब के रूप में पौराणिक चरित्र को लेकर गीतों की रचना की है, जो प्रयोगस्वरूप सफल प्रतीत हो रहा, साथ ही वर्तमान को उस चरित्र से जोड़ते हुए दिख रहे हैं।'अंगुलिमाल', 'अभिमन्यु', 'अश्वत्थामा', 'विदुर', 'विश्वामित्र उवाच', 'बृहन्नला' और 'शिव'।अंगुलिमाल के चरित्र को सब जानते हैं, मगर वर्तमान में अंगुलिमाल स्वयं के गरिमा और संस्कृति का हनन, छल, द्वेष जैसे सभी विकृतियों में इस प्रकार ढल गया है कि बड़े शान से इसमें ही जी रहा है।कवि अपने विचारों को व्यक्त करने की पूरी आजादी होती है।वह किसी घटना को किस रूप में देखता है, यह उसकी स्वतंत्रता है और यही गुण भी है। उसकी संवेदनशीलता तथा घटना के देखने के नजरिये के विराट क्षेत्र की यहाँ चर्चा कर रही हूँ 'अश्वत्थामा' नाम के

शीर्षक गीत की महाभारत समाप्त होने के पश्चात् अश्वत्थामा ने पांडवों के पुत्रों और उत्तरा के गर्भ को ब्रह्मास्त्र से नुकसान पहुँचाया था। इससे कृष्ण ने उसे बहुत ही कष्टकारी रोग से ग्रस्त हो चिरकाल तक धरती पर भटकने का श्राप दिया और आज भी मान्यता है की वह इसे भोग रहा है। सूर्यप्रकाश मिश्र जी ने इस एक गीत के माध्यम
से कृष्ण पर सवाल उठाते हैं, कहते हैं कि छल से गुरु द्रोणाचार्य के मृत्यु के उपरांत क्या पुत्र को कोध आना सामान्य नहीं है और उसने अगर बदले की भावना से यह कुकृत्य किया, तो क्या गलत किया इस युद्ध में बहुत से नियम तोड़े गए थे, फिर रण में द्रोणपुत्र को भी पांडवों द्वारा वध करवा दिया होता–

''खण्डित होते सिद्धांतों का
हर कर्ज उतार दिया होता
कह देते कुंती पुत्रों से
उसको भी मार दिया होता।''

आगे बढ़ते हुए मिश्र जी के गीत 'वृहन्नला' को पढ़ते हुए रोमांचित और चमत्कृत हुए बिना पाठक नहीं रह सकता।

''प्रत्यंचा की ध्वनि से कह दो
अनुशासन की सीमा लाँघे
कह दो बाणों से बहुत हुआ
अब उठकर अपना हक माँगे
संदेश भेज दो लिप्सा को
विश्वास तुम्हारा खत्म हुआ।''

मन से हार गए व्यक्ति को उसके अपनी प्रशक्ति का आभास नहीं होता, वह स्वयं पहचान खोकर बेबस की भाँति जीने लगता है। समय की हार स्वीकार कर अपने सारे विवेकरूपी आयुध को अपने ऊपर लादे हुए अकर्मण्यता के लिबास के बोझ तले जीता है।

यह एक व्यक्ति ही नहीं, पूरा समाज, पूरा एक देश भी हो सकता है। ऐसे में जरूरत होती है एक आह्वान की, जो उसे उसके शक्ति की पहचान करा सके, उसके अस्तित्व का बोध करा सके। गीत सांकेतिक रूप में यह भी प्रकट करता है कि मनुष्य विपरीत परिस्थिति में भी किस प्रकार अपने पक्ष में समय होने तक धीरज और संयम धारण कर उसे गुजर जाने जैसा दुष्कर वक्त जीने को बाध्य हो जाता है; क्योंकि उसे यह भलीभाँति ज्ञात है कि पुरुषार्थ के समय ही उसकी बुद्धि और शक्ति का प्रयोग सार्थक होगा। इसी संदर्भ में कवि कहते हैं –

''दिन आये शौर्य प्रदर्शन के
परिहास तुम्हारा खत्म हुआ
इस पल से ही है शुरवीर
संत्रास तुम्हारा खत्म हुआ।''

'आओ नदी', 'उत्तरार्ध', 'उत्तरों के चेहरे', 'चील', 'डरा हुआ सच' से होते हुए रचना 'नींव और दीमक' पर आकर रुक जाने को विवश हुए, जो आज की परिस्थिति को बयान करने में जिन प्रतीकों का प्रयोग किया है, वह एकदम माकूल है, कवि ने इतनी गहरी दृष्टि से अपनी चिंता जाहिर की है। जिस धरा पर राम, कृष्ण, सीता, अहिल्या, लक्ष्मीबाई जैसे प्रणेता जन्म लिये, आज उसी भूमि को परिवर्तन की आड़ लेकर भ्रष्ट करने का दीमक लग चुका है–

''कुल दीमक का अति प्रसन्न है
कठिन भूमि भुरभुरी हुई है
मुक्त आचरण की परिभाषा
परिवर्तन की धुरी हुई है
उठो देश के पहरेदारो
हवा बहुत खुरदुरी हुई है।''

जिसे व्यक्तिगत विकास कह रहे हैं समाज तथा परिवार में मुक्तव्यवहार की स्वछंदता को बड़े आदर से स्वीकार कर लिया जा रहा उसके दुष्परिणाम हमें समग्र दिख रहे हैं। यह स्वतंत्रता कहीं विपरीत राह न अपना ले, इसके लिए भी कवि सजग होकर सचेत कर रहें हैं। 'पतझड़ हार गया', 'बनारस', 'बेटी का खत', 'भोर की हवा', 'युग परिवर्तन', 'विश्व के साथी'–ये गीत समय के साथ–साथ चलते हुए भावपूर्ण सृजन हुए हैं।

इस गीत संग्रह का शीर्षक गीत एक सजग आह्वान है, जो कई आयामों पर दृढ़ता से विजयघोष करती हुई लेखनी की धार से समय को बेचने और उसपर विजय की बात करते हुए उद्वेलित करता सृजन है, जो नव युग के उत्थान के लिए समर्पित कवि के भीतर की हुंकार है, यह एक बेजोड़ रचना है–

लेखनी आयुध तुम्हारी
कम न आँको तीक्ष्ण है ये
जागरण का मंत्र घोषित
चक्रधारी कृष्ण है ये
पग उठेंगे वक्ष खोले
कांति की हुंकार लेकर।''

जिस कृष्ण ने समूचा महाभारत रच दिया। संसार को गीता जैसा ग्रंथ दिया। कवि या रचनाकार को मिश्र जी वहीं आदर देते हुए उसके बराबरी में लाकर खड़ा करते हैं।

इसी क्रम में गीत 'क्षण भंगुर' की चर्चा भी आवश्यक समझती हूँ, जो चरित्र हमेशा से मस्तिष्क कौंधता है कि उस प्रतिज्ञा का क्या औचित्य जब सामने अन्याय की सीमा पार हो रही हो, उस भीष्म प्रतिज्ञा का क्या मूल्य जहाँ सत्य पराजित हो रहा हो, नारी की अस्मिता का क्षरण हो रहा हो... इसलिए यहाँ इसके विरोध में जाकर मिश्र जी कहते हैं–

मैं भीष्म नहीं क्षण भंगुर हूँ
निर्लिप्त काल के माथे पर
सच्चाई का नव अंकुर हूँ
मैं सीमित नहीं प्रतिज्ञा में
मेरा पथ बहुआयामी है
मन नायक है अधिनायक है

इस गीत में कवि का अपने समाज, राष्ट्र के प्रति कर्तव्य से अडिग रह सत्यानुगामी चरित्र के दृढ़संकल्पित व्यक्तित्व का परिचय दे रहे जो समाज में जागरूकता का परिचायक भी है।

इस प्रकार सूर्य प्रकाश मिश्र द्वारा लिखा गया यह काव्य संग्रह कई मामलों में आज लिखे जा रहे गीतों में एक अलग पहचान के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है, जिसे पढ़कर पाठक कहीं भावुकता में बह जायेगा, तो कहीं मन यायावर हो समूचे विश्व का साथी बन आज के धर्मयुद्ध में विदुर पा भीष्म नहीं, वरन युग परिवर्तन के सारथी बनने में वो कहाँ खड़ा है, यह स्वयं ही निर्णय करने को बाध्य हो जायेगा। भावपक्ष की प्रधानता के साथ कलापक्ष भी सराहनीय है, जिससे यह पाठकों के सम्मुख
अपने प्रतीकों और बिम्ब के लिए सराही जायेगी, मिश्र जी को इसमें महारत हासिल हैं। मैं आशा करती हूँ कि यह गीत संग्रह साहित्यप्रेमी के पास जरूर चाहिए। इसके साथ ही गीतकार सूर्य प्रकाश मिश्र जी को इस गीत संग्रह की हार्दिक बधाई!

लेखक सूर्य प्रकाश मिश्र
प्रकाशन–लिटिलबर्ड पब्लिकेशन,
प्रथम संस्करण–2022, मूल्य–280/–

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303